डॉ. राकेश गिरी

कुण्डलिनी योग

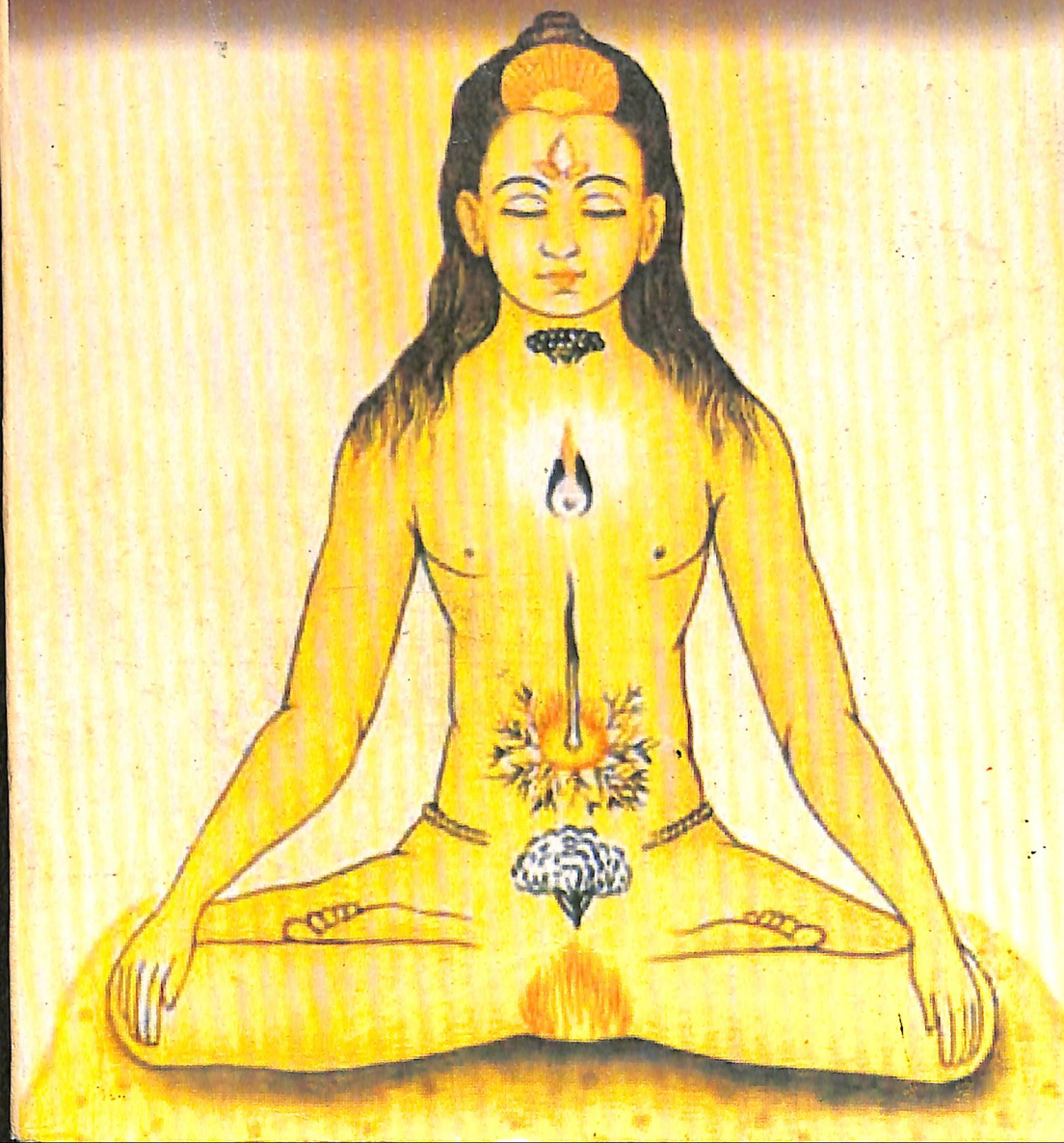

कुण्डलिनी योग

राकेश गिरी

सत्यम् पब्लिशिंग हाऊस
नई दिल्ली-110059

ISBN 978-93-80190-68-6

© सुरक्षित

प्रथम संस्करण : 2011

प्रकाशक
आर. डी. पाण्डेय
सत्यम् पब्लिशिंग हाउस
N.3/25, मोहन गार्डन, नई दिल्ली-110059
दूरभाष : 011-25358642
शोरूम : 4378/4बी, 305, जे.एम.डी. हाऊस,
मुरारीलाल स्ट्रीट, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली-110002
मो. 09968277749

शब्द संयोजक :
श्री कृष्णा कम्प्यूटर ग्राफिक्स
दिल्ली–32

मुद्रक :
विशाल कौशिक प्रिन्टर्स
शाहदरा, दिल्ली-93

भूमिका

भूमिका :

कुण्डलिनी स्वयं में एक ऐसी शक्ति है जिसका वर्णन करने के लिए प्राचीन एवं अर्वाचीन विद्वानों ने अपने देश काल एवं परिस्थिति के अनुसार भिन्न–भिन्न प्रकार के निकटतम रूपक प्रयोग किये हैं। कहीं कुण्डलिनी को नारी–पुरूष की सम्मिलित सत्ता का रूप देने के लिए अर्द्धनारीश्वर भगवान की कल्पना की गई है तो कहीं उसकी सर्प वृत्ति का ध्यान करके "साढ़े तीन कुण्डली मारे सर्प" को संज्ञा दी गयी है। आज के परिप्रेक्ष्य में हम इसे विद्युत शक्ति के समान ही एक शक्ति मान सकते हैं। विद्युत शक्ति हीटर में लगा देने पर गर्मी, कूलर में लगा देने से ठंडक, टी.वी. में चलचित्र, रेडियों में गाना, रोगी में स्वास्थ्य आदि देती है। तात्पर्य यह है कि शक्ति एक ही है वह अलग–अलग विधि से प्रयोग करने पर अलग–अलग कार्य सम्पन्न कर सकती है। इस प्रकार कुण्डलिनी शक्ति को भी विभिन्न प्रकार के – सात्विक, राजसिक और तामसिक कार्यो के लिए प्रयुक्त किया जा सकता है।

कुण्डलिनी जागरण का अर्थ है अपने अंदर छिपे पड़े प्राणशक्ति के भण्डार का योग साधना के माध्यम से स्फोट प्रक्रिया द्वारा रहस्योद्घाटन आत्म कल्याण एवं लोक कल्याण के निमित्त। इसके लिए उस द्वार तक पहुंचने के अनेकानेक मार्ग हैं जहाँ वह चाबी लगायी जाती है जो प्राणाग्नि को उच्चस्तरीय ऊर्जा में बदलकर साधक का ब्रहम्वर्चस् बढ़ा देती है, किंतु कोई भी मार्ग बिना मार्गदर्शक के पार नहीं किया जा सकता। हमारी सुषुम्ना नाड़ी जो मूलाधार से सहस्त्रार तक नीचे से ऊपर सर्पिणी की भांति साढ़े तीन फेरे लगा कर पहुंच कर क्षीर सागर में बैठे सहस्रफणि सर्प में बदल जाती है, हमारी जीवन ऊर्जा का मूलाधार है। इड़ा पिंगला नाड़ी इस प्राणशक्ति की ऊर्ध्वगमन प्रक्रिया साधक की इच्छानुसार नियंत्रण में सहायता करती है। नीचे से ऊपर तक ऐसे अनेकानेक द्वार है, जिनका क्रमशः भेदन कर साधक अपने सहस्त्रार चक्र के आनंदमय कोष को जगा सकता है। व आत्म बोध के चरम लक्ष्य को प्राप्त कर सकता है। मूलाधार रूपी नीचे वाले द्वार के पास

रूद्रग्रंथि है तो सूर्यचक्र के पास शरीर मध्य में विष्णु ग्रंथि एवं मस्तिष्क मध्य ब्रम्हाग्रंथि। इसी प्रकार सूक्ष्म व कारण शरीर को लपेटे पाँच कोष हैं जिनसे यह हमारा समग्र ढांचा विनिर्मित हुआ है। यह चौदह रत्न यदि मनुष्य हस्तगत कर ले तो वह देवोपम स्थिति में बंधनमुक्ति एवं आत्म साक्षात्कार की स्थिति में पहुंच जाता है।

कुण्डलिनी विज्ञान का अनुसंधान वस्तुतः प्रसुप्त की जागृति का विज्ञान ही है यदि यह योग सध सके तो शारीरिक, बलिष्ठता, मानसिक प्रतिभा एवं आत्मिक वर्चस्व को असाधारण रूप से बढ़ाया जा सकना संभव है। कुण्डलिनी शक्ति की तुलना विद्युत ऊर्जा या आभा से की गयी है। ''तडिल्लता समरूचिर्विद्युल्लेखेव भास्वरा'' सूत्र में उसे बिजली की लता रेखा जैसा ज्योतिर्मय बताया गया है। इसी प्रकार एक अन्य स्थान पर उसे प्रचंण्ड अग्नि रेखा एवं दिव्य वैश्वानर अग्नि की उपमा दी गयी है। कुण्डलिनी वस्तुतः प्राणाग्नि के रूप में जीवनशक्ति प्राणशक्ति के रूप में ब्रम्हाण्डीय चेतना की आत्मसत्ता में प्रतिष्ठापित प्रतिमूर्ति है जिसका संचालन वह पराप्रकृति ही करती रहती है। यह मानवीय विद्युत शरीर के इर्द–गिर्द फैले तेजोबलय के रूप में शरीर मस्तिष्क के चारों ओर देखी जा सकती हैं यह एक प्रकार का ''आध्यात्मिक डायनामाइट'' है जिसकी ऊर्जा यों तो मनुष्य के कण–कण में विद्यमान है किंतु मस्तिष्क हृदय और जननेन्द्रिय मूल में उसकी विशिष्ट मात्रा पायी जाती है।

प्राणाग्नि कुण्डलिनी ही जीवट प्रतिकूलताओं से लड़ने वाली जीवनी शक्ति व जिजीविषा–हिम्मत के रूप में मनुष्य में कूट–कूट कर भरी है। मनुष्य के सूक्ष्म शरीर में यह प्रसुप्त ऊर्जा छह तालों की तिजोरी के रूप में बंद है जो षट्चक्र के रूप में भँवर नाड़ी गुच्छक अथवा विद्युत्प्रवाह के रूप में सुषुम्ना व उसके चारों ओर स्थिति है। इसी मार्ग से मनुष्य ऊर्ध्वगमन कर ब्रम्हलोक पहुंचता है ऊर्ध्वगमन शब्द का पर्यायवाची शब्द है उत्थान, उत्कर्ष, अभ्युदय। इनसे उच्च स्तर के लोगों की स्थिति का आभास मिलता है। भौतिक बड़प्पन तो साधन सम्पन्नता के आधार पर निकृष्ट कोटि के व्यक्ति भी प्राप्त कर लेते हैं, पर आत्मिक महानता प्राप्त करने के लिए तो गुण, कर्म स्वभाव की उत्कृष्टता का सम्पादन ही एक मात्र उपाय है। कुण्डलिनी उत्थान से इसी आंतरिक उत्कर्ष की प्रेरणा मिलती है और अभ्युदय का आधार बनता है। जिसे मानव जीवन का सर्वोपरि सौभाग्य कहा जा सके।

विषय–सूची

क्र.	अध्याय	पृष्ठ संख्या
अध्याय – 1		7
	योग की परम्परा एवं इतिहास	
	योग शब्द का अर्थ एवं परिभाषा	
	योग की व्याख्याएँ	
	योग के प्रकार	
अध्याय – 2		33
	कुण्डलिनी क्या है?	
	कुण्डलिनी महाशक्ति की वैज्ञानिक व्याख्या	
	कुण्डलिनी महाशक्ति की पौराणिक व्याख्या	
	कुण्डलिनी महाशक्ति का स्वरूप और आधार	
	कुण्डलिनी का स्थान	
	कुण्डलिनी के नाम अनेक	
अध्याय – 3		63
	षट्चक्रों का स्वरूप और रहस्य59	
	कुण्डलिनी के चक्र	
	चक्रों की वास्तविकता का प्रमाण73–77	
	कुण्डलिनी के षट्चक्र और उनका वेधन	
अध्याय – 4		93
	कुण्डलिनी एवं उसका जागरण91	
	कुण्डलिनी जागरण की पूर्व तैयारी	
	कुण्डलिनी जागरणी की विधि	

कुण्डलिनी की प्रसुप्तावस्था
कुण्डलिनी की जाग्रतावस्था
कुण्डलिनी का स्वरूप
नाड़ियों का स्वरूप व नाड़ियों की संख्या
कुण्डलिनी जागरण, नादानुसंधान, समाधि और केवल्य की प्राप्ति

अध्याय – 5 103

कुण्डलिनी साधना क्यों किस प्रयोजन के लिए?
कुण्डलिनी जागरण से आत्मिक और भौतिक सिद्धिया

कुण्डलिनी जागरण से व्यक्तित्व में क्रांति
कुण्डलिनी साधना का मर्म एवं आवश्यक मार्गदर्शन

उपसंहार 228

संदर्भ ग्रंथ सूची 134

अध्याय – 1
योग की परम्परा एवं इतिहास

योग विद्या का इतिहास बहुत प्राचीन है जो स्वास्थ्य, सौंदर्य, शांति और आत्मदर्शन के अभिलाषी हैं वे योग का अभ्यास करते हैं। योग एक सच्ची विद्या है, जिसका फल प्रत्यक्ष प्राप्त होता है। वैदिक युग में ही जब ऋषियों ने ब्रम्ह–विद्या के संबंध में अन्वेषण किया तभी उन्हें योग विद्या की आवश्यकता प्रतीत हुई। वास्तुतः कुछ विद्वानों की मान्यता है कि वैदिक मंत्रों की रचना योग के अभ्यास की उच्चतम भूमिकाओं का ही परिणाम है जिसे पतंजलि ने ऋतुंभरा प्रज्ञा कहा है यह ऋतु विश्व के उन प्रथम धर्मो की संज्ञा है जिससे प्रजापति सृष्टि का विधान करते हैं। समष्टि मन और व्यष्टि मन दोनों ही उसके परिणाम है। वस्तुतः ऋतु से अनुप्रविष्ट मानव चित्त ही योग की उपलब्धि है मानव का मन जब ब्रम्हरूप ऋतु से संयुक्त हो जाता है उसे उसी ऋतुंभरा प्रज्ञा की स्थिति में विश्व के जिन सत्यों का दर्शन होता है वे ही वैदिक मंत्रों में प्रकट हुए हैं। कोषों के अनुसार वैदिक मंत्रों का अर्थ पर्याप्त नहीं है मनः समाधि की उच्चतम भूमिका में मंत्रों का दर्शन होता हैं उस समाधि में सत्य दर्शन की क्षमता जिन्हें प्राप्त हुई वे ही ऋषि थे अतः ऋषियों को मंत्र दृष्टा कहा गया। सत्य दर्शन की अभिलाषा मानव का सहज धर्म है। अतः योग विद्या की आवश्यकता उसके बाद सदा रही है।

योग की परम्परा अत्यंत प्राचीन है इसमें तो कोई शक हो नहीं सकता वह कितनी प्राचीन है, उसको प्रारंभ किसने किया, और कब किया, इन प्रश्नों का सीधा एक ही उत्तर देना शायद संभव नहीं होगा। परंतु प्राचीन साहित्य में योग का प्रारंभ किसने किया इसके संबंध में उल्लेख मिलते हैं। जैसे – गीता के चतुर्थ अध्याय में प्रारंभ में श्रीकृष्ण जी ने अर्जुन से कहा कि "इस योग का उपदेश सृष्टि के आरंभ में मैने सूर्यदेवता विवस्वान को दिया, उसने

अपने पुत्र मनु को वह योग सिखाया, मनु ने इक्ष्वाकु को बताया और फिर एक राजर्षियों की लम्बी परम्परा चली। अन्त में वह योग लुप्त हो गया। उसी को मैने आज तुम्हारे सामने पुनः प्रकट किया है।''

विवस्वते योगं प्रोक्तवान हमव्ययम्।
विवस्वान्मनवे प्राह मनुरिक्ष्वाकवेऽ ब्रतीत।।

गीता – 4 : 1

एवं परम्पराप्राप्तमिमं राजर्षयों विदुः।
स कालेनेह महता योगो नष्टः परंतप।। 4:2।।
स एवायं मया तेऽद्य योगः प्रोक्त पुरातनः।। 4:3।।

इसका अर्थ यह होता है कि स्वयं भगवान ने सृष्टि के प्रारंभ में ही योग की परंपरा की भी शुरूआत की थी। परंतु यह बात कब हुई, उसको कितने दिन या वर्ष हुए इस प्रश्न का उत्तर देना कठिन है।

योगविद्या सृष्टि के प्रारंभ में ही विद्यमान थी इस कल्पना का उल्लेख अन्यत्र भी मिलता है। ऋग्वेद के दसवें मंडल में कहा है कि हिरण्यगर्भ से, सबसे पहले निर्माण हुआ, उसी ने पृथ्वी, स्वर्ग आदि सभी को धारण किया।

हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे लोकस्य जातः पतिरेकः असीत्।
स दाधार पृथ्वीं द्यामुतैमां कस्मै देवाय हविषा विधेम।।

ऋग्वेद – 10:121:1

इस हिरण्यगर्भ को सभी विद्याओं का एवं कलाओं का आद्य प्रवर्तक माना जाता है। बृहद्योगियाज्ञवल्क्य स्मृति में हिरण्यगर्भ को योग का उत्पत्तिकर्ता कहा गया है।

हिरण्यगर्भो योगस्य वक्ता नान्यः पुरातनः।। 12:5।।

पंतजलि के योगशास्त्र में पृथ्वी को जिन्होंने अपने मस्तक पर आधार दिया है उस शेषनाग को योग के प्रारंभकर्ता के रूप में माना गया हैं पंतजलि उन्हीं शेषनाग के अवतार थे, ऐसी मान्यता है। पंतजलि के प्रमुख भाष्यकार व्यास ने अपने भाष्य के आरंभ में शेषनाग का नमन करते हुए उन्हें योग को देने वाले (योगदः) तथा योग के मूर्तिमंत आविष्कार (योगयुक्तः) कह के पुकारा है। इस नमन के श्लोक के अनुसार योग की परंपरा पृथ्वी से भी पुरानी हो जाती है।

ऐसा ही एक उल्लेख हठयोग के संबंध में हठप्रदीपिका के प्रारंभिक श्लोक में मिलता है। वहॉ पर स्वात्माराम ने भगवान शिव को ''आदिनाथ''

शब्द से कहते हुए "उन्होंने हठयोग का सर्वप्रथम उपदेश दिया" ऐसा वर्णन किया है –

श्री आदिनाथाय नमोऽस्तु तस्मै येनोपदिष्टा हठयोग विद्या । .....

।। 1:1 ।।

इन चारो के उल्लेखों से योग के दैवी या दिव्य उत्पत्ति की कल्पना सामने आती है। परंतु मनुष्यों ने उसका उपयोग कब से प्रारंभ किया इस प्रश्न का उत्तर इन उल्लेखों में नहीं मिलता। हिरण्यगर्भ, भगवान शिव या शेषनाग, इनमें से कोई ऐतिहासिक व्यक्ति नहीं है। परंतु इन उल्लेखों से शायद हम यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि इतिहास की पहुंच जहां तक पीछे जा सकती है उस काल में भी योगविद्या विद्यमान थी।

योग के इतिहास को हम पांच खण्डों में बांट सकते हैं इनमें सबसे प्रथम कालखण्ड श्रुतिकाल था। यह एक लम्बा समय था जो वेदों की रचना के समय से लेकर बुद्ध भगवान के बाद लगभग दो शताब्दियों तक रहा। दूसरे खण्ड को दर्शनों का काल कह सकते हैं जिसमें कहा जा सकता है, तृतीय शताब्दि ईसवी से दसवीं शताब्दि तक का काल था। इसके बाद के चौथे काल खण्ड में भक्ति तथा हठयोग इन दो धाराओं का विकास हुआ। इसके बाद उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य से हम योग के इतिहास का आधुनिक काल मान सकते हैं। इन काल खण्डों की सीमा रेखाएं सुस्पष्ट और निश्चित नहीं हैं। ये पांच कालखण्ड सामान्य प्रवृत्तियों के आधार पर ही बनाये जा सकते है, और ये प्रवृत्तियां कई बार एकदम भिन्न न होकर एक दूसरे से मिली हुई नजर आती हैं। इन पांच काल खण्डों में योग का स्वरूप क्या था, उसका विकास एवं प्रचार किस प्रकार हुआ था। इसकी जानकारी हमें उस काल के साहित्य से मिलती है।

श्रुतिकाल :

श्रुतियों में योग की अनेक संकल्पनाओं का स्पष्ट उल्लेख विभिन्न स्थानों पर मिलते हैं। युजुर्वेद में शरीस्थ पांच वायुओं का तेज बढ़ने के लिए इस प्रकार प्रार्थना की गयी है।

प्राणाय में वर्चोदा वर्चसे पवस्व व्यानाय मे वर्चोदा
वर्चसे पवस्व उदानाय ..... ।। युजुर्वेद :– 7:27 ।।

अथर्ववेद में कहा है कि, जानकार लोग शरीर के सभी स्थानों से प्राण

एकत्रित करके दिव्य लोक को प्राप्त करते हैं –

प्रजानन्तः प्रतिगृण्हन्तु पूर्वे प्राणमङ्.गेभ्यः पर्यावचरन्तम्।
दिवं गच्छ प्रतिष्ठिता शरीरैः स्वर्ग याहि पथिभिर्देवयानैः।।
अथर्ववेदः – 2:34:5।।

अथर्ववेद के एकादश काण्ड में एक पूरा सूक्त प्राण के महत्व को वर्णन करने के लिए रचा गया है। (चतुर्थ सूक्त) वृहदारण्यकोपनिषद् में कहा है कि प्राण, अपान, व्यान, उदान तथा समान ये सभी वायु प्राण ही है।

प्राणोऽपानो व्यानोदानः समानोऽनमित्येतत्सर्वं
प्राणमेवैतत्।। 1:5:3 ।।

छांदोग्य उपनिषद में (1:3:3) प्राण, अपान, व्यान आदि वायुओं की व्याख्या की गयी है। इस प्रकार योग की वायु की संकल्पना श्रुतिकाल में ही सुस्पष्ट हो चुकी थी ऐसा कहा जा सकता हैं। वायुओं के साथ नाड़ियों की कल्पना जुड़ी हुई है। इनके भी वर्णन श्रुतियों में आये हैं। ये नाड़ियां शुक्ल, नील, पीत, लोहित आदि वर्णो की होती है। ऐसा वर्णन छांदोग्य उपनिषद (8:6:1) में आया है। ''सुषुप्ति की अवस्था में इन नाड़ियों में प्राण स्थिर होता है, तब मनुष्य स्वप्न नहीं देखता और कुछ भी नहीं जानता'', ऐसा वर्णन इसी उपनिषद (8:6:3) में किया गया है।

कठोपनिषद् में हृदय से निकलने वाली नाड़ियों की संख्या एक सौ एक बतायी है, तथा उनमें से एक नाड़ी, जो ऊपर मस्तिष्क की ओर जाती है, उसमें से जो व्यक्ति अपने प्राण ऊपर ले जाता है, वह अमृतत्व को प्राप्त होता है, ऐसा कहा गया है। यह सुषुम्ना नाड़ी का उल्लेख है, ऐसा निश्चित कह सकते हैं –

शतं चैका च हृदयस्य नाऽयस्तासां मूर्धानमभिनिः सृतैका।
तयोर्ध्वमायन्नमृतत्वमेति विश्रंऽन्या उत्क्रमणे भवन्ति।।
कठोपनिषद् : 2:3:16 ।।

इस नाड़ी से प्राण को ऊपर ले जाने का अर्थ यह हो सकता है कि श्रुतिकाल में भी कुण्डलिनी शक्ति तथा उसके जागरण के द्वारा मोक्ष प्राप्ति का अनुभव रखने वाले ऋषि–मुनि हुआ करते थे, भले ही उन्होंने कहीं ''कुण्डलिनी'' यह नाम न लिया हो।

मस्तिष्क में प्राण ले जा कर उसके आत्मदर्शन करने का वर्णन तैत्तिरीय उपनिषद् में भी आया है।

स य एषोऽनतर्हृदय आकाशः तस्मिन्नयं पुरूषो मनोमयः।
अमृतो हिरण्यमः। अंतरेण तालुके य एषस्तन इवा –
वलंबते सेन्द्रयोनिः ।। 1:6:1 ।।

आदि शंकराचार्य ने इस मंत्र पर अपने भाष्य में इसका स्पष्टीकरण करते हुए सुषुम्ना नाड़ी को "स्वरूप प्राप्ति का द्वार" कहा है।

मुण्डकोपनिषद् में इसका वर्णन हृदयग्रंथि को खोलने की परिभाषा में किया गया है।

भिद्यते हृदयग्रंथिश्रिच्छद्यंते सर्व संशयाः।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन दृष्टे परावरे।।
मुण्डकोपनिषद् – 2:2:8 ।।

मुक्ति या आत्मदर्शन की उस स्थिति को प्राप्त करने के साधन के संबंध में मुण्डकोपनिषद् में (3:2:6) "संन्यासयोग" शब्द का, तथा श्वेताश्रवतर उपनिषद् में (2:8 तथा 2:9) ध्यानात्मक आसन में स्थिर बैठकर मन को एकाग्र करने का तथा प्राणायाम के कुंभक एवं रेचक का स्पष्ट उल्लेख आया है। मन को अपने वश में करना, यही इन दोनों का उद्देश्य बताया है।

इनके अलावा श्रुतियों में योग के संबंध में अन्य अनेक उल्लेख मिलते हैं। उन सबको यहाँ। पर लिखना आवश्यक नहीं है। इन उल्लेखों से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि श्रुतिकाल में योग के शारीरिक, मानसिक तथा आध्यात्मिक पक्ष को भली–भांति जानने वाले, तथा उसके अंतिम लक्ष्य को अपने जीवन में प्रत्यक्ष अनुभव करने वाले साधन एवं सिद्ध लोग भारतवर्ष में थे। परन्तु योग के सभी तथ्य एवं संकल्पनाओं का संग्रह करके उसका एक स्वतंत्र शास्त्र एवं दर्शन बनाकर उसकी प्रतिष्ठापना करने का कार्य अभी नहीं किया गया था। वह कार्य पंतजलि ने ईसा पूर्व द्वितीय शताब्दी के आस–पास सम्पन्न किया, ऐसी विद्वानों की मान्यता है। उसके साथ योग के इतिहास का द्वितीय कालखण्ड आरम्भ हुआ।

दर्शनों का काल :

इस काल में भारतीय दर्शन की अन्यान्य शाखाओं के सिद्धांत एकत्रित रूप में सूत्रग्रंथों में संग्रहित किये गये। प्रत्येक दर्शन ने अपने सिद्धांतों का मण्डन तथा अन्य दर्शनों के सिद्धांतों का खण्डन किया। योगसूत्र के अलावा भगवद्गीता, योगवशिष्ठ, योगयाज्ञवल्क्य आदि की रचना भी इसी कालावधि में हुई, ऐसा मानते हैं। तंत्र, पुराण, स्मृतियां जैसे मनुस्मृति, याज्ञवल्क्य स्मृति,

दक्षस्मृति, आदि जिनमें यत्र–तत्र योग के सिद्धांत एवं आचारों का वर्णन मिलता है, वे भी इसी काल की देन है। जैन तथा बौद्ध धार्मिक संप्रदायों के अंतर्गत योग साहित्य भी इसी काल में लिखा गया। इस काल में योग का एक सुनिश्चित शास्त्र बन गया। विश्व की रचना आत्मा एवं सृष्टि का स्वरूप, मनुष्य जन्म का अंतिम लक्ष्य तथा उसकी प्राप्ति के साधन आदि के संबंध में सैद्धांतिक एवं आचार के पक्ष स्थापित हुए हैं। इनमें से कुछ सिद्धांत जैसे द्वैतवाद, जीवों की अनेकता, सृष्टि का क्रम आदि अन्य दर्शनों ने नहीं माने। परंतु योग की आचार पद्धति जैसे यम, नियम, आसन, प्राणायाम, ध्यान एवं समाधि के संबंध में किसी भी दर्शन में आपेक्ष या आशंका नहीं उठायी गयी। सिद्धांतों के बारे में चाहे जितनी मतभिन्नता रही हो, इन आचारों का सभी विचारकों ने समान रूप से आदर किया। मुक्ति के सर्वोत्तम साधक के रूप में योग के अभ्यास, धारणा, ध्यान आदि सभी पक्षों ने स्वीकार किये। इस द्वितीय काल खण्ड को हम सूत्रग्रंथो का या स्मृतियों का काल (सूत्रकाल या स्मृति काल) भी कह सकते हैं। इसके तुरंत बाद चौथी शताब्दी ईसवी से टीकाग्रंथों का काल आरंभ हुआ।

टीकाओं का काल :

यह लगभग दसवी शताब्दी ईसवी तक जारी रहा। योग–सूत्र पर व्यास भाष्य की रचना चौथी शताब्दी में हुई, ऐसा मानते हैं। उस भाष्य के आधार पर विज्ञान भिक्षु, भोजदेव, वाचस्पति मिश्र एवं नागोजी भट्ट ने अपनी टीकाएं लिखीं। योग के सिंद्धातों की एवं मूलभूत मान्यताओं की विस्तार से चर्चा इन टीकाओं में पायी जाती है। भारतवर्ष के इतिहास का यह सर्वोच्च समय था इसमें विविध कला एवं विद्याओं का समुचित विकास हुआ। योग पर अनेकग्रंथ इस काल खण्ड में लिखे गये। योग उपनिषद, भक्ति के ग्रंथ, स्त्रोत ग्रंथ इसी समय लिखे गये। स्मृतियाँ, पुराण तथा तंत्र के अनेक प्राचीन ग्रंथ इस काल खण्ड के आरंभ में लिखे गये। योग दर्शन का अन्य दार्शनिक परम्पराओं से तालमेल साधने का प्रयास अनेक दार्शनिकों ने इसी काल खण्ड में किया।

भक्ति एवं हठयोग के उत्कर्ष का काल :

यह कालखण्ड लगभग दसवीं शताब्दी से आरंभ होकर उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त तक मान सकते हैं। इस काल में नाथ सम्प्रदाय का प्रसार हुआ। शारीरिक क्रियाओं के द्वारा मन को वश में करना यह उसकी विशेषता

थी। भक्ति सम्प्रदाय के विकास का भी यही समय था। हठयोग के ग्रंथ, जैसे हठयोग प्रदीपिका, घेरण्ड संहिता तथा तंत्र के अनेक ग्रंथों की रचना इस काल के मध्य में हुई। यह भारत पर इस्लाम एवं ईसाई धर्म के आक्रमणों का काल था। आक्रमणों से संघर्ष समूचे देश में होता रहा। आक्रमणों के दौरान अनेक आश्रम, संस्थायें, पुस्तकें तथा परम्परा इन सबका बड़े पैमाने पर विध्वंस हुआ। योग के क्षेत्र में वास्तविक जानकार लोग बहुत कम बचे। समाज में अनेक अंधविश्वास, कुरीतियाँ तथा गलत धारणायें फैलने लगीं। सामाजिक जीवन का सभी क्षेत्रों में ह्रास हुआ। ब्रिटिश शासन के समूचे देश में फैल जाने के समय धार्मिक एवं सामाजिक अवनति की पराकाष्ठा हो गयी थी अज्ञान एवं अंधकार के इस युग की समाप्ति होकर एक नये जागरण एवं पुनुरूत्थान का प्रारंभ स्वामी विवेकानंद एवं अन्य मनीषियों के प्रयत्नों से हुआ इस पुनर्जागरण के समय को हम आधुनिक कालखण्ड कह सकते हैं।

आधुनिक काल :

स्वामी विवेकानंद जी ने देश के नवयुवकों को राष्ट्रीय पुनरूत्थान की जो प्रेरणा अपने भाषणों से तथा विचारों से दी, उसके साथ योग के इतिहास में एक नये अध्याय का प्रारंभ हुआ। योग एवं वेदान्त का एक समन्वित दृष्टिकोण उन्होंने लोगों के सामने रखकर दुनियां के लोगों को योगसाधना की ओर आकृष्ट किया। उन्होंने देश विदेश में योग के क्षेत्र में जो नव चेतना जागृत की उसको अनेक आधुनिक योगियों ने सर्वत्र प्रसारित किया इनमें महर्षि दयानंद, स्वामी श्रद्धानंद, रमण महर्षि, योगी अरविन्द आदि का योगदान महत्वपूर्ण रहा।

वर्तमान समय के योग के स्वरूप पर दो योगियों का सबसे अधिक प्रभाव रहा ऐसा दिखाई देता है। ये दो मनीषि हैं – ऋषीकेश के स्वामी शिवानंद तथा लोनावला के स्वामी कुवलयानंद, स्वामी शिवानंद के दिव्य जीवन संघ से प्रशिक्षित एवं प्रेरित होकर तथा उनके निजी व्यक्तित्व से प्रभावित होकर वर्तमान समय के अनेक स्वामियों ने भारतवर्ष में तथा विदेशों में योग के प्रचार–प्रसार का महत्वपूर्ण कार्य किया है। स्वामी कुवल्यानंदजी ने वैज्ञानिक तथ्यों के एवं तकनीक के आधार पर योग के विभिन्न प्रायोगिक अंगों का मूल्यांकन करने की आवश्यकता पर जोर दिया, और उस अनुसंधान के लिए "कैवल्यधाम" की संस्था स्थापित करके अपने अनुसंधान कार्य को "योग मीमांसा" पत्रिका में प्रकाशित करना 1919 ईसवी में प्रारंभ किया।

उनके इस प्रयास की उपयोगिता के संबंध में वैज्ञानिक तथा योगी आशंकित थे। वैज्ञानिक मानते थे कि योग में मात्र कुछ चमत्कारों के अलावा और कोई तथ्य है ही नहीं। दूसरी ओर योगी लोगों का कहना था कि योग की प्रक्रियाओं तक योग की पहुंच नहीं हो सकती। परंतु योग मीमांसा पत्रिका में प्रथम चार–पांच वर्षो में ही योग के क्षेत्र में जो वैज्ञानिक अनुसंधान के लेख छपे, उनसे संसार में सर्वत्र स्वामी जी के नये दृष्टिकोण का स्वागत होने लगा।

इस वैज्ञानिक प्रक्रिया की सबसे आधुनिक कड़ी है – शरीर विज्ञान, मनोविज्ञान एवं वैद्यक शास्त्र के चिकित्सकों का योग की उपयोगिता से प्रभावित होना। वर्तमान समय में अनेक रोग विशेषज्ञ दवाईयों के साथ–साथ रोगों की चिकित्सा में योग का भी उपयोग करने लगे हैं। यह योग के इतिहास में सबसे आधुनिक आविष्कार है, जिसका प्रचार स्वास्थ्य रक्षा, खेलकूद, मनोकायिक चिकित्सा आदि अनेक क्षेत्रों में होने लगा है। इससे योग के इतिहास में एक नया परिवर्तन आने की संभावना दिखाई देती है। उससे सामान्य मनुष्य के दैनिक जीवन में योग को एक महत्व का स्थान प्राप्त होगा, और शारीरिक, मानसिक तथा सामाजिक स्वास्थ्य की रक्षा में आने वाली पीढ़ियाँ इसका अधिकाधिक उपयोग करेंगी, ऐसा निश्चित कहा जा सकता है।

"योग" शब्द का अर्थ एवं परिभाषा

"योग" संस्कृत भाषा का एक प्राचीन काल से प्रचलित शब्द हैं। योगः योगम् योगे, योगेन, योगैः आदि इस शब्द के अनेक रूप वेदों की संहिताओं में पाये जाते हैं। पाणिनी के योग शब्द की व्युत्पत्ति "युजिर योगे" एवं "युज समाधौ" इन दो प्रकारों से दी गयी है। प्रथम व्युत्पत्ति के अनुसार योग शब्द का अनेक अर्थो में प्रयोग किया गया है जैसे – जोड़ना, मिलाना, जोड़ मेल, कोई विशेष प्रसंग, नक्षत्र तारकाओं की कोई विशेष स्थिति, आदि। ऋगवेद में वैदिक ऋषियों ने इन्द्र या अग्नि के स्तवन में योग शब्द का इस प्रकार उपयोग किया है।

स धा नो योग आ भुवत स राये स पुरंध्याम्।
गमद्वोजेभिरा स नः ।। ऋग्वेद – 9:5:3 ।।

अर्थात – हे इंद्र हमने अभी तक जो प्राप्त नहीं किया उस सम्पत्ति को पाने में तुम हमारे साथ रहो। तुम अपने सामर्थ्य से हमारी साधना में साथ दो।

अग्नि की उपासना करने वाले ऋषि कहते हैं –

यस्माद्वते न सिध्यन्ति यज्ञो विपश्चितश्चन।
स धीनां योगमिन्वति।। ऋग्वेद – 9:18:7 ।।

अर्थात – यज्ञ करने वाले ऋषियों की बुद्धि की एकता अग्नि करता है। अयन्त्र ऋषियों ने उनके प्रत्येक कार्यो में सहायता करने के लिए (योग योगे) तथा युद्ध में विजय प्राप्ति के लिए इन्द्र की प्रार्थना इस प्रकार की है –

योगे योगे तवस्तरं वाजे वाजे हवामहे।
सखायः इन्द्र मूर्तये।। ऋग्वेद – 1:30:7 ।।

ऋग्वेद के दसवें मण्डल में छन्दों की रचना को "छन्दसां योगः कहा गया है।

कः छन्दसा योगमावेद धीरः। कोधिव्यांप्रति वाचं प्रपाद।।
।। ऋग्वेद – 10:11:49 ।।

ऋग्वेद में पाये जाने वाले "योग" शब्द के इन उल्लेखों से एक बात तुरंत स्पष्ट हो जाती है कि जिस अर्थ में आज हम "योग" शब्द का सामान्यतः प्रयोग करते हैं जैसे कि आसन, प्राणायाम या ध्यान, धारणा के अर्थ में उस अर्थ से युग्वेद में प्रयुक्त "योग" शब्द मेल नहीं खाता। "योग" शब्द के वर्तमान समय के अर्थ को यदि हम तकनीकी अर्थ कहे तो इस तकनीकी अर्थ में "योग" शब्द का प्रयोग "सामान्य अर्थ में किया गया है। इसी अर्थ में यह शब्द अथर्ववेद में भी पाया जाता है। वहां पर "अष्टा योगैः" तथा "षड़योगोभिः" इन शब्दों से आठ या छः बैलो से चलाये जाने वाले हल का उल्लेख किया है।

इमं यवमष्टायोगैः षड्योगेभिरचकृतुः।। अथर्ववेद – 6:91:9 ।

इसी प्रकार बृहदारण्यकोपनिषद् में "रथयोगाः" शब्द का प्रयोग रथ के जोड़ हुए घोड़ों के अर्थ में पाया जाता है।

न तत्र रथा न रथयोगा न पन्थानो।। बृहदारण्यकोपनिषदः
4:3:10 ।।

ये सभी "योग" शब्द के सामान्य अर्थ के ही उदाहरण हुए। इस अर्थ में योग शब्द का प्रयोग बाद के संस्कृत साहित्य में तथा अन्य भारतीय भाषाओं में प्रचुर मात्रा में मिलता है। वियोग, संयोग, आयोग, प्रयोग, विनियोग, सहयोग युक्त, आयुक्त, अयुक्त, युक्तात्मा आदि "योग" शब्द के अनेक रूप संस्कृत एवं अन्य भाषाओं में प्रचलित हैं। वे सब "युजिर" धातु के

ही रूप हैं।

योग शब्द का तकनीकी अर्थ वैदिक संहिताओं में भले ही न मिलता हो, फिर भी वह अर्थ भी अत्यंत प्राचीन है ऐसा कहना पड़ेगा, क्योंकि कठोपनिषद् जैसे अत्यंत प्राचीन उपनिषद में इस अर्थ में योग शब्द की परिभाषा दी गयी है। योगशास्त्र, योग दर्शन, हठयोग, राजयोग, क्रियायोग, कर्मयोग, आदि शब्दों में "योग" शब्द का तकनीकी अर्थ संनिहित है। अतः यह हमेशा ध्यान में रखने की बात है कि "योग" शब्द के दो भिन्न–भिन्न अर्थ होते हैं। उनमें से एक अर्थ जो अधिक पुराना है, वह "युजिर–योगे" इस धातु से निकला है। इस सामान्य अर्थ में किन्हीं दो चीजों के मेल या जोड़ को योग कहा जाता है। दूसरा अर्थ जो बाद में योग शब्द के साथ जुड़ गया, वह "युज समाधौ" इस धातु से निकला है। वहां "योग" शब्द से मन को शांत करना, एकाग्र करना, वश में लाना, आदि अर्थ बनते हैं। और वह मन की उस स्थिति को प्राप्त करने के साधनों को भी अपने अर्थ में समाविष्ट कर लेता है जैसे आसन, प्राणायाम, ध्यान आदि। जोड़ने का संबंध केवल सामान्य अर्थ में हैं, तकनीकी अर्थ में नहीं। भगवद् गीता में "योग" शब्द सामान्य तथा तकनीकों, दोनों अर्थो में आया है। कालिदास के रघुवंश में रघुकुल के राजाओं का वर्णन करते समय "वे परमात्मा का ध्यान करते हुए शरीर त्याग करते थे" ऐसा कहा है। (योगेनान्ते तनुत्यजाम्..... ।। रघुवंश 9:8 ।।), यहां पर तकनीकी अर्थ में है। अन्य स्थान पर सामान्य अर्थ में "योगे" शब्द का प्रयोग भी मिलता है, जैसे दिलीप राजा एवं उनकी पत्नी सुदक्षिणा का वर्णन शिशिर ऋतु के पश्चात चित्रा एवं चन्द्रमा के समान (हिमनिर्मुक्तयोर्योगे चित्रा चन्द्रमसोखि रघुवंश :– 1:46 ।।) ऐसा कहा है।

"योग" शब्द के ऐसे तकनीकी एवं सामान्य ऐसे दो अलग अर्थ हैं, इस अर्थ को न समझने के कारण कुछ लोग "जोड़ना" इस अर्थ को ही तकनीकी संदर्भ में लगाकर "आत्मा तथा परमात्मा का मिलन" या "जीव का ईश्वर में लीन हो जाना" ऐसा भ्रांतियुक्त अर्थ कर बैठते हैं। परंतु योग शास्त्र के रचयिता पंतजलि के अनुसार कैवल्य की अवस्था में – जो कि योग का अंतिम लक्ष्य है – आत्मा किसी भी अन्य तत्व में लीन न होकर केवल अपने आप में, अपने निजी स्वरूप में अवस्थित होकर रहती है।

तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम्।। योग दर्शनः – 1:3 ।।

अर्थात् "आत्मा का परमात्मा से मिलन" यह अर्थ योग दर्शन में स्वीकृत

नहीं है। वास्तव में योग का उद्देश्य है आत्मा का प्रकृति से वियोग करना। गीता में भी योग की अंतिम स्थिति को दुःख–संयोग–वियोग की स्थिति कहा है।

तं विद्याद्दुःख–संयोग वियोगं योगसंज्ञितम्।। गीता – 6:23 ।।

योग वास्तव में वियोगात्मक है, भले ही सामान्य अर्थ में "योग" शब्द का तात्पर्य जोड़ने से रहा हो। आत्मा का परमात्मा में लीन हो जाना यह वेदान्त की कल्पना है। वेदान्त में आत्मा ब्रम्हा से स्वतंत्र, अलग है ही नहीं। परंतु योग दर्शन के अनुसार प्रत्येक आत्मा स्वतंत्र और नित्य है। उसके मिलन या लीन होने की कल्पना बन नहीं सकती। कैवल्य शब्द का अर्थ है अकेला, अलग, स्वतंत्र, अपने आप में, स्वरूप में रहना।

यहां पर दो प्रश्न निर्माण होते हैं। पहला यह है कि यदि वेद ब्राम्हण तथा आरण्यकों में "योग" शब्द तकनीकी अर्थ में कहीं भी नहीं मिलता, तो क्या वैदिक ऋषि उन साधनों के बारे में अनभिज्ञ थे, जिनको हम आज योग के अर्न्तगत लेते हैं, जैसे ध्यान, एकाग्रता, शुद्ध आचरण, चित्त की समाहित अवस्था आदि और दूसरा प्रश्न यह है कि तकनीकी अर्थ में योग शब्द का प्रयोग कब होने लगा? अर्थात् क्या यह अर्थ प्राचीन नहीं हैं?

पहले प्रश्न का उत्तर नकारात्मक ही देना पड़ेगा। वैदिक ऋषि मनुष्य जीवन के सर्वोच्च ध्येय से अर्थात ब्रम्हा प्राप्ति से भंली–भांति परिचित थे, इतना ही नहीं, बल्कि उसके प्राप्ति के अनेक साधनों की भी उन्हें जानकारी थी। उन साधनों को वे योग के अर्न्तगत नहीं लेते थे। उनका उल्लेख "दीक्षा", "तपस", "ध्यान", "ब्रम्हचर्य" आदि शब्दों से किया जाता था। वेदों में ये शब्द कई स्थानों में उल्लिखित हैं। अतः वैदिक ऋषि योग साधना से परिचित तो थे। परंतु वे उसको अन्य शब्दों से कहा करते थे, और "योग" शब्द का प्रयोग केवल सामान्य अर्थ में (जैसे – जोड़ना, मिलाना) किया करते थे। तो फिर "योग" शब्द को तकनीकी अर्थ कब प्राप्त हुआ? इस प्रश्न के उत्तर में यह कहना पड़ेगा कि यद्यपि तकनीकी अर्थ सामान्य अर्थ के बाद का है, फिर भी वह लगभग उतना ही पुराना है। क्योकि वह प्राचीन उपनिषदों में मिलता है। पाणिनी के समय, अर्थात् ईसा पूर्व सातवीं शताब्दी में दोनों अर्थ प्रचलन में थे यह बात निश्चित है। कठोपनिषद् में तकनीकी अर्थ में "योग" शब्द की सुस्पष्ट परिभाषा इस प्रकार की गयी है –

तां योगमिति मन्यंते स्थिरामिन्द्रिय धारणाम्।

अप्रमत्तस्वदा भवति योगो हि प्रभवाप्ययौ।।

कठोपनिषद् – 2:3:11 ।।

अर्थात – पंच इंद्रियों, मन एवं बुद्धि की स्थिर अवस्था को योग कहते हैं। इसको प्राप्त करने पर मनुष्य संपूर्ण रीति से दोषरहित हो जाता है।

श्रेवताश्रवतर उपनिषद् में (1:3) ध्यान योग के माध्यम से ऋषियों ने आत्मस्वरूप को किस प्रकार जान लिया उसका उल्लेख इस प्रकार किया है।

ते ध्यानयोगानुगता अपश्यन्देवात्मशक्ति स्वगुणैनिर्गूढाम्।
यः कारणानि निखिलानि तानि कालात्मयुक्ता न्यधितित्येकः।।

श्रवेताश्रवतर उपनिषद् – 1:3 ।

तकनीकी अर्थ में योग शब्द के सबसे प्राचीन उल्लेख शायद यहीं हैं। इनके बाद पंतजलि के योग सूत्र में, गीता में तथा स्मृतियों में एवं पुराणों में योग का प्रचुर वर्णन मिलता है। हमें यहां पर यह हमेशा ध्यान में रखना चाहिए कि "योग" शब्द के दो अर्थ हैं, तथा दोनों प्रचलित हैं। इन दोनों में संभ्रम नहीं करना चाहिए।

योग की व्याख्याए

योग का साहित्य अत्यंत विशाल है। योग को मुख्य विषय के रूप में लेकर अनेक ग्रंथ लिखे गये हैं। अन्य अनेक ग्रंथ हैं जिनमें अन्य विषयों के साथ स्थान–स्थान पर योग का भी वर्णन मिलता है। दोनों प्रकार के साहित्य में योग की अनेक व्याख्याएं पायी जाती हैं। उन सबकी संख्या सैकड़ों में हो जायेगी। यहां पर उनमें से कुछ प्रमुख व्याख्याओं का उल्लेख करेंगे।

इन व्याख्याओं को दो मुख्य प्रकारों में बांटा जा सकता है। योग को एक अवस्था या स्थिति के रूप में वर्णन करने वाली व्याख्याएं, तथा उसके साधन पक्ष को स्पष्ट करने वाली व्याख्याएं। कुछ व्याख्याओं में स्थिति तथा साधना, दोनों का विचार आता है। कठोपनिषद् की उपरोक्त व्याख्याएं "स्थिति" को इंगित करती है। मैत्रायणी उपनिषद् में योग की अवस्था का वर्णन इस प्रकार किया गया है।

एकत्वं प्राणमनसेरिंद्रियाणां तथैव च।
सर्व भाव परित्यागो योग इत्यभिधीयते।।

मैत्रायणी उपनिषद – 6:25 ।।

अर्थात – योग वह अवस्था है जिसमें मन, विचारों से रहित होकर

इंद्रियों, मन और प्राणों की एकता हो जाती है।

मैत्रायणी उपनिषद् की यह व्याख्या कठोपनिषद् से मिलती–जुलती लगती है। मन और प्राण तथा इंद्रियां जब शांत एवं निश्चल हो जायेंगी तब निश्चित ही उस व्यक्ति को आत्मस्वरूप की अर्थात् अपने वास्तविक स्वरूप की पहचान हो जायेगी यही बात निर्वाणोपनिषद् में दी हुई योग की व्याख्या से स्पष्ट होती है। वह व्याख्या इस प्रकार है – योगेन सदानंदस्वरूप दर्शनम्।।

महोपनिषद में योग को मन को शांत करने के एक उपाय के रूप में इस प्रकार स्पष्ट किया गया है।

मनः प्रशमनोपायो योग इत्याभिधीयते।।

महोपनिषद् – 5:42 ।।

अर्थात मन को शांत करने के लिए जो भी अन्यान्य उपाय किये जाते हैं (शारीरिक तथा मानसिक) उन सब का अन्तर्भाव योग में किया जा सकता है। योग विशिष्ट में भी योग के साधना पक्ष पर अधिक जोर देते हुए कहा है –

संसारोत्तरणे युक्तिर्योगशब्देन कथ्यते।। योगवशिष्ट – 6:13:3 ।।

"योग" शब्द के सामान्य अर्थ का (जैसे जोड़ना, संयोग करना) प्रयोग करते हुए उसकी व्याख्या अनेक ग्रंथों में की गयी है। उदाहरणार्थ, योगयाज्ञवल्क्य इस ग्रंथ में यह व्याख्या मिलती है।

संयोगो योग इत्युक्तो जीवात्म परमात्मनोः।।
योग याज्ञवल्क्य – 1:44 ।।

जीवात्मा और परमात्मा के संयोग की कल्पना वेदांत की है, वह योग दर्शन से मेल नहीं खाती, इस बात को हम पहले ही स्पष्ट कर चुके हैं। इसी प्रकार की व्याख्या विष्णु पुराण में भी पायी जाती हैं।

आत्म प्रयत्न सापेक्षा विशिष्टा या मनोगतिः।
तस्य ब्रम्हाणि संयोगो योग इत्याभिधीयते।।

विष्णु पुराण – 6:7:3 ।

यह तो हुई संयोग की बात। इसके विपरीत वियोग के आधार पर योग की व्याख्या भी कुछ ग्रंथों में मिलती है। यदि आत्मा मोक्ष या मुक्ति की अवस्था में केवल अपने निजी स्वरूप में रहती है, जैसा कि योग दर्शन का

कहना है, तो किन संयोग की अपेक्षा वियोग की परिभाषा ही योग की व्याख्या में अधिक उपयुक्त समझी जानी चाहिए योग में आत्मा का किसके साथ वियोग होना है। इसके उत्तर अन्यान्य ग्रंथों में अलग–अलग मिलते हैं। उदाहरणार्थ पंतजलि के टीकाकार भोजदेव ने योग की व्याख्या पुरूष एवं प्रकृति के वियोग के आधार पर की है।

पुं प्रकृत्यो वियोगोऽपि योग इत्युदितो यया।। भोजवृत्ति – 3 ।।

भगवद् गीता में योग की व्याख्या तीन प्रकारों से की गयी है। छठे अध्याय में "संयोग" तथा "वियोग" इन दोनों की परिभाषा में योग की व्याख्या आयी है।

तं विद्याद् दुःखसंयोगवियोगं योगसंज्ञितम्।
स निश्रच्येन योक्ताव्यो योगोऽनिर्विण्णचेतसा।।

गीता – 6:23 ।।

अर्थात दुःखसंयोग का वियोग करने वाले योग का अभ्यास निश्चयपूर्वक तथा खेद रहित मन से करने का निर्देश गीता में दिया गया है। महाभारत में भी वियोग के रूप में योग की व्याख्या की गई है। परन्तु संसार के दुःखों से वियोग के साथ ब्रम्ह के साथ संयोग होना यह योग का संयोग तथा वियोगात्मक उभय स्वरूप वहां पर स्पष्ट किया गया है।

तं विद्याद् ब्रम्हणों, योगं वियोगं योग संज्ञितम्।।

महाभारत, वनपर्व 213 :33

इसी प्रकार ऐक्य तथा वियोग (ब्रम्हा के साथ ऐक्य तथा अज्ञान के साथ वियोग) इन दोनों कल्पनाओं को लेकर योग की व्याख्या गरूड़ पुराण में इस प्रकार मिलती है।

ज्ञानपूर्ववियोगाऽसौ ज्ञाने नष्टे च योगिनः।
सा मुक्तिब्रम्हाणा चैक्यमनैक्यं पुत्र ते गुणैः।।

गरूड़ पुराण – 120:9 ।

योग की सबसे अधिक उद्धत की जाने वाली व्याख्या पंतजलि के योगसूत्र की है। पतंजलि ने चित्त वृति निरोध की स्थिति तथा उस स्थिति को प्राप्त करने के लिए किये जाने वाली साधना, इन दोनों का योग कहा है। इस साधना के आठ अंग होते हैं, इसलिए पंतजलि के योग को अष्टांग योग भी कहते हैं।

योगाश्रवचितवृत्तिनिरोधः।। योगसूत्र – 9:2 ।।

इसी प्रकार की व्याख्या शांडिल्योपनिषद में भी मिलती है।

योगस्तु वृत्तिरोधोहि।। शांडिल्योपनिषद् – 1:7:24 ।।

गीता के अनुसार योग की एक व्याख्या का उल्लेख ऊपर आया ही है। इसके अलावा गीता में योग की दो अन्य व्याख्याएं द्वितीय अध्याय में की गयी हैं, जो कर्मयोग के संदर्भ में हमेशा कही जाती है।

समत्वं योग उच्यते।। गीता – 2:48 ।।

तथा

योगः कर्मसु कौशलम् ।। गीता – 2:50 ।।

योग की अन्य अनेक व्याख्याएं संस्कृत साहित्य में उपलब्ध हैं उनमें से बहुत सी व्याख्याएं योग के अन्यान्य प्रकारों के वर्णन में आती हैं। यहां पर हमने कुछ एक महत्व की एवं प्रातिनिधिक व्याख्याओं का उल्लेख किया है। इन सभी व्याख्याओं से योग का क्या कोई समान रूप निकल आता है?यह प्रश्न महत्व का है। इस प्रश्न को लेकर हम यह कह सकते हैं कि योग एक ऐसी साधना पद्धति है, जो साधन को अज्ञान एवं दुःख से मुक्त कराते हुए जीवन के परम लक्ष्य की ओर अग्रसर करती है।

योग के प्रकार

जब हम "योग" शब्द का प्रयोग एक उपासना पद्धति के अर्थ में करते हैं तब यह प्रश्न निर्माण होता है कि क्या योग एक है कि अनेक?क्या उसके जो अनेक प्रकार माने जाते हैं वे सब सर्वथा एक दूसरे से भिन्न या स्वतंत्र है?इस प्रश्न का उत्तर यह है कि वास्तव में योग एक ही है, अनेक नहीं। फिर भी प्रत्यक्ष आचार एवं साधना में तथा उपासना के प्रकारों में कुछ विविधता अवश्य बन जाती है जैसे खाद्य वस्तुओं के अनेक प्रकार होते है परंतु "भूख लगना" यही उन सबका मूल कारण होता है, और "क्षुधा शांति" यहीं उन सबका अंतिम उद्देश्य है। या जैसे एक स्थान से दूसरे स्थान पर पहुंचने के लिए अन्यान्य मार्ग होते हुए भी आरंभ स्थान एवं गंतव्य स्थान समान हो सकता है, उसी प्रकार योग के सभी प्रकारों में "आरंभ" और "अंतिम" लक्ष्य एक सा ही है क्योंकि उन सबका आरंभ दुख और अज्ञान से ही होता है, तथा दुख एवं अज्ञान से सर्वथा मुक्ति यहीं सब प्रकारों का ध्येय है। इसीलिए हम यह कह सकते हैं कि योग के विभिन्न प्रकार मूलभूत रीति से एक दूसरे से भिन्न नहीं है। उनमें केवल ऊपरी दृष्टि से भिन्नता है।

किसी भी समाज में लोगों की प्रवृतियां भिन्न–भिन्न दिखाई देती है।

कोई अधिक तार्किक होता है तो कोई अधिक भावना प्रधान। कोई अधिक विवेकशील एवं गंभीर होता है, तो कोई अधिक हट्टा–कट्टा और शारीरिक बल सम्पन्न। जीवन के प्रति इन विभिन्न लोगों के दृष्टिकोण भिन्न होना स्वाभाविक ही है इन विविध प्रवृत्तियों के कारण किसी का मन भक्ति में अधिक लग गया, किसी का कर्म में, तो किसी का ज्ञान में और इससे लोगों में योग के विभिन्न प्रकार प्रचलित हुए। ये प्रकार ऊपरी दृष्टि से भले ही अलग–अलग प्रतीत होते हों परंतु उन सब में एक समान दृष्टिकोण संनिहित है। उन सबमें एक समान आपसी मेल है। यह बात गीता में बहुत सुंदर रीति से स्पष्ट की गयी हैं गीता में भक्ति एवं ज्ञान का, कर्म का सुंदर समन्वय किया गया है। कर्मयोग को सफल बनाने के लिए साधक को मनोव्यापार एवं जीवन मूल्यों की अच्छी पहचान होनी चाहिए। उसका मन शुद्ध होना चाहिए उसमें मानव जाति के प्रति प्रेम होना चाहिए तथा ईश्वर पर निष्ठा होनी चाहिए। अर्थात् कर्म योग की सफलता के लिए भक्ति और ज्ञान दोनों आवश्यक हैं। कर्म भक्ति और ज्ञान ये तीनों मन के विकास क्रम के अंग हैं ज्ञान के बिना भक्ति अंध विश्वास के बराबर हो जायेगी। कर्म रहित भक्ति निष्प्रभावी सिद्ध होगी। इसी प्रकार भक्ति और कर्म के बिना ज्ञान मात्र एक अंह–भावना का रूप लेगा। इसीलिए गीता में ज्ञानी, भक्त और कर्मयोगी के जो लक्षण स्थान–स्थान पर बताये गये हैं उन सबमें समानता एवं एक रूपता दिखाई देती है। योग वास्तव में एक ही है, यद्यपि उसकी उपासना पद्धति के आविष्कारों में विविधता के एक अवश्य स्थान है।

परंतु यहां पर एक महत्व की बात ध्यान में रखनी चाहिए। जो लोग योग को एक जीवन की पद्धति के रूप में लेकर मुक्ति या मोक्ष का एक साधन बनाना चाहते हैं, उनके लिये योग का कोई भी प्रकार उस लक्ष्य तक पहुंचने की दृष्टि से अपनाया जा सकता है। परंतु आज योग के क्षेत्र में जो गुरू, शिक्षक तथा साधक एवं अभ्यासक दिखाई देते हैं उनमें मोक्ष प्राप्ति के लिए योग मार्ग में आकृष्ट हुआ शायद ही कोई होगा। ज्यादातर लोग किसी स्वास्थ्य संबंधी समस्या के समाधान के लिए योग को अपनाते हैं। इनके अलावा कुछ लोग शांति की खोज में योग का सहारा लेते हैं, खास करके विदेशी लोग, जो अपने भौतिक साधन सम्पन्न परंतु नैतिकता विहीन तथा दिशा विहीन कृतिमतापूर्ण जीवन पद्धति से ऊबकर शांति के नये मार्ग की तलाश में होते हैं। इन विदेशी लोगों की रूचि एवं आर्थिक सहायता के कारण

मेडिटेशन, संकीर्तन, आदि यौगिक प्रक्रियाओं के अनेक नये–नये आविष्कार पिछले दो–तीन दशकों में देश–विदेशों में प्रचलित हुए हैं। स्वास्थ्य की खोज में तथा शांति की खोज में निकले हुए योग जिज्ञासुओं की दृष्टि से ही "योग एक है कि अनेक" यह प्रश्न महत्वपूर्ण बन जाता है, क्योंकि उनकी जिज्ञासा, उनकी समस्या तथा योग में उनकी लगन सीमित होती है। आत्म ज्ञान के लिए योग को अपनाने वाले साधकों के समान उनकी लगन एवं जिज्ञासा तीव्र तथा गहरी नहीं होती उनके सामने यह प्रश्न आता है कि योग का कौन सा प्रकार उनके लिए सबसे शीघ्र फलदायी होगा। ऐसे लोगों की संख्या बहुत अधिक है। उनके लिये योग के मुख्य चार प्रकार कहे जा सकते हैं। जैसे – हठयोग, कर्मयोग, भक्तियोग एवं राजयोग। वैसे तो योग साधना के किसी भी अंग के बाद "योग" शब्द को जोड़कर योग का कोई प्रकार बन सकता है, जैसे क्रिया योग,तंत्र योग, मंत्रयोग, जपयोग, नादयोग, लययोग, कुण्डलिनीयोग, ध्यान योग, ज्ञान योग, बुद्धियोग, सन्यासयोग आदि। योग साहित्य में कहीं राजधिराजयोग, अमनस्क योग, अस्पर्श योग, आदि शब्द भी कहे गये हैं। ये सभी योग के स्वतंत्र प्रकार बनते हैं ऐसी बात नहीं है।

योग का प्रकार कोई भी हो उसमें हमें दो बातें हमेशा दिखाई देती हैं। पहली बात है अपने मन को वश में करना, नियंत्रित करना, उसकी बाह्य विषयों के पीछे दौड़ने की प्रवृत्ति कम करना। इसको कहते हैं वैराग्य। दूसरी बात है इस प्रकार वश में किये हुये मन को एकाग्र करना तथा आत्मा में लगाना। इसको कहते हैं अभ्यास। अर्थात् योग का प्रकार कोई भी हो, वैराग्य एवं अभ्यास यही उसके दो प्रमुख पहलू होते हैं। इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए अब हम योग के ऊपर बताये हुए चार मुख्य प्रकारों का वर्णन करेगे। अन्य सभी प्रकार इनमें से किसी न किसी के अन्तर्गत समाविष्ट किये जा सकते हैं।

राजयोग

जैसे राजा मनुष्यों में श्रेष्ठ होता है, वैसे राजयोग योग के सभी प्रकारों में प्रमुख कहा जा सकता है। इसको ध्यान योग, सांख्य योग, ज्ञान योग, अभ्यास योग आदि शब्दों से भी कहा गया हैं। मुख्यतः राजयोग का तात्पर्य पंतजलि के अष्टांग योग से है। ऐसा मानते है मन को शुद्ध, शांति एवं स्थिर करना, तथा अपने वश में करना जिससे कि उसमें आत्मज्ञान का उदय हो जाए यही राजयोग की विशेषता है। मन की अशुद्धि एवं अस्थिरता का मुख्य कारण हैं पंच क्लेश ये पंच क्लेश अर्थात अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष तथा

अभिनिवेश चित्त में अनादि काल से विद्यमान रहकर उसको मलिन एवं अशुद्ध बनाते हैं। इन चित्त मलों को दूर करना, अर्थात "चित्तशुद्धि" करना यह राजयोग का सार है। इसके लिये आठ साधन होते हैं। जिनमें से प्रथम पांच को बहिरंग तथा अंतिम तीन को अंतरंग कहते हैं। बहिरंगों का अर्थात् यम, नियम, आसन, प्राणायाम एवं प्रत्याहार इन पांच साधनों का अभ्यास करने से साधक का मन अंतरंगों के अभ्यास के योग्य हो जाता है। धारणा, ध्यान एवं समाधि ये तीन अंतरंग हैं। अष्टांग योग के अभ्यास से चित्त के मल धुल जाते हैं, अज्ञान नष्ट होता है, तथा विवेक ज्ञान का उदय होता है। इस अवस्था को विवेक ख्याति या पुरूष ख्याति कहते हैं। इसी का दूसरा नाम है जीवनमुक्ति अर्थात् जीवन में ही मुक्त हो जाना। यही योग का अंतिम उद्देश्य है।

परंतु सामान्य मनुष्य के लिए जैसे राजा के पद को प्राप्त होना अत्यंत कठिन है, वैसे ही जीवन्मुक्ति को प्राप्त करना भी लगभग असंभव सा है। इसीलिये राजयोग का अंतिम लक्ष्य प्राप्त करने के कुछ अन्य सरल उपाय मनीषियों ने ढूंढ लिये, जैसे – हठयोग।

भक्तियोग

योग के प्रकारों में भक्तियोग शायद सबसे प्राचीन है। प्राचीन काल में इसे भक्ति योग न कहकर केवल भक्ति शब्द से ही कहा जाता था जिन ऋषियों ने वेदों की ऋचाएं रची उनमें भक्ति भावना का आविष्कार प्रचुर मात्रा में था। प्रकृति की शक्तियों से वे बहुत प्रभावित थे। वे इन विभिन्न शक्तियों की प्रार्थना करते थे तथा उनको यज्ञ में हवि अर्पण करते थे। अपने स्वास्थ्य और सुरक्षा तथा भलाई के लिए इन शक्तियों का वे आवाहन किया करते थे। वेद की ऋचाओं में भक्ति का सबसे प्राचीन उदाहरण मिलता है पुराणों में तथा भगवत् गीता, योगवसिष्ठ, आदि ग्रंथों में भक्ति योग का विस्तृत वर्णन मिलता है। श्रीमद्भागवत् भक्तियोग के प्रमुख ग्रंथो में से एक है। पंतजलि ने अपने योगसूत्र में भक्तियोग का उल्लेख "ईश्वर प्राणिधान" इस शब्द से किया है। निर्बीज समाधि की सर्वोच्च अवस्था को प्राप्त होने के अन्यान्य उपायों में ईश्वर प्राणिधान एक उपाय कहा गया है।

(पंतजलि योग सूत्र–1:23 ।।)

भक्ति मनुष्य के जीवन का एक स्वाभाविक पहलू है। मनुष्य अपने जीवन मे कई बार अपने को अपूर्ण और शक्तिहीन तथा विफल पाता है जीवन

में अनेकों बार अभाव, कष्ट एवं दुःखों का सामना करना पड़ता है। चिरंतर सुख शांति एवं पूर्णत्व की मनुष्य की इच्छा पूरी हो पाना तब तक असंभव सा बन जाता है, जब तक कि मनुष्य किसी असामान्य शक्ति का सहारा न लें। इसीलिए भक्ति आवश्यक हो जाती हैं भक्तियोग का मूल श्रोत यह विश्वास है कि इस चराचर विश्व का निर्माण किसी दैवीशक्ति से हुआ है तथा वहीं दैवीशक्ति इस संसार का धारण और पोषण करती हैं मनुष्य के जीवन की तथा विश्व की सभी घटनाएं उसी दैवी शक्ति की इच्छा पर निर्भर करती है इसी शक्ति का नाम ईश्वर है। ईश्वर ही संसार का उत्पत्तिकर्ता, रचयिता, नियामक एवं अंतिम आश्रय है, इस विश्वास में भक्तियोग की नींव है। ईश्वर की कृपा का पात्र बनना यह भक्तियोग का सार है। भजन, पूजन, प्रार्थना, स्वाध्याय, दान तप आदि से भक्त ईश्वर की कृपा प्राप्त करता है। ये सब भक्तियोग के अंग हैं। भक्तियोग के मूल तथ्य तथा सिद्धांत दो है – (1) मन को तृष्णा से मुक्त एवं शुद्ध करना, तथा (2) मन को ईश्वर में लगाना।

बारहवीं शताब्दी के बाद भारत में भक्तियोग का एक विशाल जन आंदोलन के रूप में विकास हुआ। ज्ञानदेव, नानक,कबीर, नामदेव, तुकाराम, मीरा, गौरांग, नरसी मेहता तथा अन्य अनेक संत महात्माओं ने सामाजिक समानता, आचार शुद्धि और मनुष्य मात्र के प्रति प्रेम का संदेश सारे समाज में फैलाया। वह भक्तियोग के चरम उत्कर्ष का समय था। वर्तमान समय में भक्ति वेदान्त प्रभुपाद के हरे कृष्ण आंदोलन के रूप में भक्तियोग का प्रसार विश्व के अनेक देशों में हुआ है।

कर्मयोग

कर्मयोग का समग्र वर्णन भगवद् गीता में किया गया है। कर्म का अर्थ है शरीर से, मन से या वाणी से की जाने वाली कोई भी क्रिया। क्रिया या कर्म के बिना कोई भी मनुष्य एक पल भर भी नहीं रह सकता। कर्मयोग का अर्थ कर्म को छोड़ना नहीं है बल्कि कर्म करते हुए उसके बंधन से मुक्त रहना। यह कैसे संभव होगा? क्योंकि भारतीय दर्शनों की यह मान्यता है कि मनुष्य जो भी कर्म करेगा उसका फल उसको अवश्य ही प्राप्त करना होगा। उससे छुटकारा उस फल को प्राप्त करने से ही मिल सकता है। कर्म करने पर उसके संस्कार चित्त में रह जाते हें। वह तब तक चित्त में रहेगा जब तक कि उसका फल प्राप्त न किया जाये। इस प्रकार किसी भी समय हमारे मन में पुराने सभी कर्मो के संस्कार संचित रहते हैं। इसको कहते हैं कर्माशय। यह कर्माशय ही

मनुष्य को इस संसार में बांधता है, तथा संस्कारों के फल भोगने के लिये बार–बार पुनर्जन्म लेने मे विवश कर देता है। इसीलिए कर्माशय को कर्मबंध भी कहा जाता है। अच्छे कर्म को अच्छा फल मिलेगा अर्थात् सुख मिलेगा, बुरे कर्मो का परिपाक दुःख में होगा। कर्म फल अवश्य ही मिलता है, चाहे इस जन्म मे हो, चाहे आगे के जन्मों में। कर्मफल को कर्मविपाक कहा जाता है। जब तक सभी कर्मो के संस्कार भोग करके खत्म नहीं किये जाते तब तक संसार से मुक्ति नहीं हो सकती।

कर्मयोग वह मुक्ति या कुशलता है जो मनुष्य को कर्मबंध से मुक्त करा देती है। यह युक्ति है कर्मफल की इच्छा को छोड़ देना। इसीलिए इसको अनासक्त योग या निष्काम कर्मयोग कहते हैं। इसमें लाभ या हानि, सुख तथा दुःख, शीत और उष्ण आदि द्वंदों के प्रति समान दृष्टिकोण रखा जाता है। इसीलिए यह समत्व बुद्धियोग भी कहलाता है कर्मफल के संबंध में आसाक्ति को छोड़कर कर्म करते रहना, कर्तव्य को कभी नहीं छोड़ना, यह कर्मयोग का सारांश है। फलासक्ति को छोड़ने से कर्मबंध से मुक्त हो सकते हैं अर्थात् आसक्ति का त्याग करते हुए मन को स्थिर एवं शांत रखना, यही कर्मयोग का स्वरूप गीता के निम्न श्लोकों में स्पष्ट किया गया है –

योगस्थः कुरूकर्माणि संग्डः व्यक्त्वा धनंजय।
सिद्धयसिद्धयोः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते।।

गीता – 2:48 ।।

अर्थात – हे धनंजय। सिद्धि और असिद्धि के प्रति समान भाव रखकर, आसक्ति को छोड़कर कर्म करो।

इस समत्व को ही कर्मयोग कहते हैं।

श्रीकृष्ण जी गीता में आगे कहते हैं :–

कर्मजं बुद्धियुक्ताहि फलं त्यक्त्वा मनीषिणः।
जन्मबंध विनिर्मुक्ताः पदं गच्छन्त्यनामयम्।।

अर्थात – कर्मो के फल को त्याग कर समत्व बुद्धि वाले मनीषी लोग पुनर्जन्म के बंधन से छूटकर अमृतमय परम पद को प्राप्त होते हैं।

यहां पर एक सवाल पैदा होता है, कि यदि कर्म के फल में कोई आकर्षण न हो, तो फिर मनुष्य कोई कर्म करेगा ही क्यों?वह निष्क्रिय एवं उदासीन नहीं हो जायेगा? इस पर गीता का उत्तर यह है कि उदासीन तो

होना है, परन्तु कर्म के प्रति नहीं, केवल उसके फल के प्रति। यही कर्मयोग का तात्पर्य है।

हठयोग

हठयोग के एक प्रमुख आचार्य योगी स्वात्माराम ने अपने ग्रंथ हठयोग प्रदीपिका के आरंभ में हठयोग को एक सोपान या सीढ़ी कहा है जो राजयोग के अंतिम लक्ष्य तक साधक को आसानी से पहुंचा सकती हैं।

श्री आदिनाथाय नमोऽस्तु तस्मैं।
येनोपदिष्टा हठयोग विद्या।।
विभ्राजते प्रोन्नत राजयोग।
मारोढुमिच्छोरधिरोहिणी व।।

हठप्रदीपिका – 1:1 ।।

हठयोग का अर्थ है "ह" ओर "ठ" का योग। "ह" सूर्य को कहते हैं और "ठ" चन्द्र को। मनुष्य के शरीर में नाभि के पास सूर्य तथा तालु के मूल में चंद्रमा होता है। उन दोनों की एकता करने वाले योग को हठयोग कहते हैं। यह बात योगशिखोपनिषद् में कही गयी हैं।

सूर्याचन्द्रम सौरेक्यं हठ इत्याभिधीयते।।

योगशिखोपनिषद् – 1:133 ।।

सूर्य और चंद्र को क्रमशः प्राण और अपान के रूप में लेने की प्रथा योग में है। अर्थात् प्राण और अपान के ऐक्य रूप प्राणायाम का ही तात्पर्य हठयोग शब्द से लेना चाहिए, ऐसा हठप्रदीपिका के टीकाकार ब्रम्हानंद ने कहा है –

एतेन हठशब्दवाच्ययोः सूर्यचन्द्राख्ययोः प्राणापानयोरैक्य –
लक्षणः प्राणायामो हठयोग इति हठयोगस्य लक्षणं सिद्धम्।।

ज्योत्स्नाटीका – 1:1 ।।

परंतु प्राणायाम यह हठयोग का एकमेव अंग नहीं हैं उसके अलावा अन्य तीन अंग हैं। अर्थात् हठयोग रूपी सीढ़ी, आसन, प्राणायाम, मुद्रा एवं नादानुसंधान, इन चार पायदानों से बनी है। इन चार पायदानों पर क्रमशः चढ़कर साधक राजयोग के ऊँचे स्थान तक अर्थात् जीवन्मुक्ति या सहजावस्था तक पहुंच पाता है। इन चारों अंगों का विस्तार से वर्णन हम आगे करेगें।

हठयोग, यह योग का सबसे आधुनिकतम प्रकार कहा जा सकता है। इसकी परम्परा तो प्राचीन है, परन्तु विकसित स्वरूप और प्रचार की दृष्टि से

इसका प्रभाव पन्द्रहवीं शताब्दी के बाद का है। हठयोग का एक मूलभूत सिंद्धात यह है कि शरीर और मन दोनों एक दूसरों को प्रभावित करते हैं, तथा प्राण और मन ये दोनों परस्पराश्रित हैं। इसीलिए आसनादि शारीरिक क्रियाओं से तथा प्राणायाम से मन को शांत एवं एकाग्र किया जा सकता हैं। यही सिद्धांत वर्तमान समय के मनोकायिक रोगों की चिकित्सा में अत्यंत उपयुक्त सिद्ध हुआ है। उसी के पिछले दो दशकों में योग की लोकप्रियता बहुत अधिक बढ़ी है।

हठयहोग के प्रमुख आचार्य योगी स्वात्माराम जी ने हठयहोग रूपी सीढ़ी के चार पायदान आसन, प्राणायाम, मुद्रा एवं नादानुसंधान बताये हैं।

आसन :

जिस पर बैठते है उसको आसन कहा जाता है। राजा के बैठने के स्थान को सिंहासन कहा जाता था, क्योंकि उसके दोनों ओर शेर की आकृतियां रहती थी। 'उच्चासन' का अर्थ होता है किसी आदरणीय व्यक्ति का बैठने का स्थान जो अन्य लोगाकें की अपेक्षा अधिक उंचा होता है। योग में आसन शब्द से शरीर की कोई स्थिति इंगित होती है जो कुछ समय तक स्थिर रखी जाती है। यह स्थिति बैठने की ही होनी चाहिए ऐसी बात नहीं है। कुछ आसान खड़े होकर किये जाते हैं, कुछ बैठकर, कुछ लेटकर। कुछ आसनों में हाथों के बल शरीर को उठाकर संतुलित रखा जाता है। कुछ आसनों में शरीर की स्थिति उल्टी, अर्थात सिर नीचे और पैर ऊपर होते हैं। कुछ आसनों में शरीर को आगे झुकाया जाता है, कुछ आसानों में पीछे और कुछ में बांयी या दाहिनी ओर झुकाते है या घुमाते हैं। शरीर की ये सभी स्थितियां 'आसन' शब्द के अर्न्तगत आती हैं।

आसनों के दो मुख्य प्रकार किये जा सकते हैं एक प्रकार उन आसानों का है जिनमें साधक प्राणायाम या ध्यान के लिए लगातार कुछ देर तक स्थित बैठता है। इसको ध्यानात्मक आसन कह सकते हैं। पतंजलि ने अपने योगसूत्र में आसन की जो व्याख्या दी है वह मुख्य रूप से इन्ही को लागू होती है।

स्थिरम्सुखमासन्ाम्। – योगसूत्र – 2: 46

इन आसनों की संख्या बहुत सीमित है। इस प्रकार मे चार आसन अधिक प्रचलित है, जैसे – सिद्धासन, पद्मासन, स्वस्तिकासन तथा वज्रासन।

दूसरे प्रकार में वे आसन आते हैं जो शरीर के विभिन्न अंगों को व्यायाम देने के लिए प्रयोग किये जाते हैं इनको व्यायामात्मक कहते हैं। आसनों की कुल संख्या चौरासी लाख कही गयी है विश्व में जितने जीव जन्तु हैं, अर्थात् चौरासी लाख योनियां के समान आसनों की संख्या है, ऐसा धेरण्ड संहिता में कहा गया है –

आसनानि समस्तानि यावन्नो जीवजन्तवः।
चतुरशीति लक्षाणि शिवेण कथितं पुरा।। –

घेरण्ड संहिता – 2:1

परंतु वास्तव में केवल जीव–जन्तुओं के नाम से ही आसन बने हैं ऐसी बात नहीं है। कुछ आसन विभिन्न वस्तुओं के नाम पर भी हैं, जैसे हलासन, पश्चिमोत्तान, भद्रासन, तोलांगुलासन आदि। जिस किसी प्राणी या वस्तु के समान आसन की आकृति दिखाई देती है उसका नाम उसको दिया गया है। चौरासी लाख आसनों में से चौरासी मुख्य समझे गये हैं, परंतु जिन आसनों की विधि का प्रत्यक्ष वर्णन किसी न किसी ग्रंथ में मिलता है। ऐसे आसनों की संख्या इससे भी कम है। यह संख्या लगभग चालीस है। कुछ आसन ऐसे भी हैं जो बहुत प्रचलित हैं परंतु उनका नामोल्लेख किसी भी ग्रंथ में नहीं मिलता। जैसे शीर्षासन, सर्वांगासन, हलासन।

कमर सीधी रखना तथा मेरूदण्ड को ऊपर की ओर खींचते रहना यह ध्यानात्मक आसनों की विशेषता है। इसका प्रभाव मेरूदण्ड के नीचे के हिस्से में, मूलाधार चक्र में स्थित कुटिलाकृति, सुप्त कुण्डलिनी को सरल करके जागृत करने पर होता है। कुण्डलिनी शक्ति के जागरण और उत्थान की प्रक्रिया में ध्यानात्मक आसनों के कार्य में मूलबंध, जालंधर बंध, तथा उड्डियान बंध सहित कुम्भक से सहायता मिलती है। इसी प्रकार पश्चिमतान, महामुद्रा तथा मत्स्येन्द्रासन में कुण्डलिनी के स्थान पर जो खिंचाव आता है उसका भी कुण्डलिनी के जागरण में महत्व होता है। ध्यानात्मक आसनों में पदबंध लगाने के कारण जंघाओं से लेकर पैरों तक रक्तसंचार मंद होता है। इससे कमर में कुण्डलिनी के स्थान में अधिक रक्त प्राप्त होता है। यह बात भी कुण्डलिनी को जगाने में अपना महत्व रखती है।

प्राणायाम :

हठयोग का दूसरा अंग प्राणायाम है इसकी व्याख्या पतंजलि ने इस

प्रकार की है।

तस्मिन्सति श्वासप्रश्सयोर्गतिविच्छेदः प्राणायामः।

योगसूत्र – 2: 94।।

बाह्यभ्यान्तरस्तंभवृत्तिर्देशकालसंख्याभिः परिदृष्टो।

– दीर्घसूक्ष्म :।।2:50।।

ब्रह्माभ्यन्तरविषयाक्षेपी चतुर्थ : ।। 2:51।।

''तस्मिन्सति'' शब्द से पतंजलि ने यह सूचित किया है कि प्राणायाम हमेशा आसन में स्थिर बैठकर ही करना चाहिए। हमारी श्वास प्रश्वास की जो सामान्य गति होती है, अर्थात् एक मिनट में लगभग 15 बार श्वास लेना और छोड़ना, उसमें रूकावट डालना, अर्थात दीर्घ सांस लेना, दीर्घ छोड़ना तथा रोकना प्राणायाम है। उसकी बाह्य, आभ्यांतर तथा स्तम्भ, ऐसी तीन अवस्थाएं होती है। उसका मापन देश, काल तथा संख्या से किया जाता है। वह उपरोक्त तीनों वृत्तियों से भिन्न है प्राणायाम का फल इस प्रकार है –

ततः क्षीयेत प्रकाशावरणम्।। योगसूत्र – 2:52।।

धारणासु च योग्यता मनसः ।। 2:53।।

प्राणायाम के अभ्यास से चित्त के मल अर्थात् क्लेश एवं कर्माशय दूर होते हैं, तथा चित्त स्थिर होने लगता है।

मुद्रा :

मुद्रा शब्द के अनेक अर्थ है, जैसे सिक्का, सील, मुहर, चेहरे के विशेष हावभाव या उंगलियों की विशेष रचना तंत्र में जो पंचतत्व या पंच प्रकार प्रसिद्ध हैं। जैसे मद्य, मांस, मुद्रा, मत्स्य और मैथुन इनमें 'मुद्रा' शब्द का अर्थ है भूंजा हुआ धान्य। नृत्य शास्त्र में चेहरे के हावभावों से तथा उंगलियों की रचना से विभिन्न मुद्राएं बनती हैं। योग के साधनों में आसन मुद्रा और बंध ये तीनों शब्द लगभग एक ही अर्थ को प्रकट करते आये हैं। 'योगमुद्रा' इस नाम से प्रचलित स्थिति आसन जैसी ही है। विपरीत करणी मुद्रा सर्वांगासन की पूर्वावस्था ही है। फिर भी एक को 'आसन' और दूसरे को 'मुद्रा' ये नाम केवल रूढ़ि से प्राप्त हुए। हठयोग प्रदीपिका में आसन और मुद्रा ये दो अंग अलग–अलग गिने गये हैं। आसनों का उद्देश्य है, स्थैर्य, आरोग्य और अंगलाघव, अर्थात मोटापा न होना, यह बताया है। मुद्राओं का उद्धेश्य है कुण्डलिनी का जागरण। हठयोग में मुख्य दस मुद्राओं का वर्णन मिलता है।

उनमें मूलबंध, उड्डियान बंध तथा जालंधर बंध, इन तीन को मुद्राओं में गिना है। यहां पर बंध और मुद्रा इनमें कोई भेद ही नहीं रहा। इनमें से महामुद्रा तो पश्चिमतान आसन जैसी ही है। इससे यह कह सकते हैं कि 'आसन', 'बंध' और 'मुद्रा' इन तीन शब्दों के अर्थ एक दूसरे में बहुत कुछ मिले हुए रहें हैं। फिर भी तीनों में कुछ अलगाव या भिन्नता भी अवश्य रही है।

मुद्राओं का मुख्य उद्धेश्य कुण्डलिनी शक्ति को जगाने में होता रहा है इसलिए साधारण व्यक्ति के दैनिक जीवन में इसका महत्वपूर्ण स्थान हीं हो सकता। विपरीत करणी मुद्रा और योग मुद्रा ये दो मुद्राएं अवश्य उपयोगी हैं। उनको प्रत्येक व्यक्ति कर सकता है, परन्तु महामुद्रा, महाबंध, महावेध, खेचरी, बज्रोली मुद्रा तथा शक्ति चालन मुद्रा, इन मुद्राओं का योग व्यायामों में कोई स्थान नहीं होगा। इन मुद्राओं की विशेषता यह है कि त्रिबंधयुक्त प्राणायाम को इनके साथ हमेशा किया जाता है तथा कुण्डलिनी के स्थान पर इन मुद्राओं में दबाव या खिंचाव लाया जाता है। इन्हीं के फलस्वरूप मुद्राएं कुण्डलिनी के जागरण में महत्वपूर्ण योगदान देती हैं।

नादानुसंधान :

कुण्डलिनी जागृति के बाद जब वह अनाहत चक्र में पहुंचती है, तथा हृदयाकाश में प्राण स्थिर हो जाता है, तब साधक को कुछ विशेष प्रकार के नाद या ध्वनि सुनने में आने लगती है। ध्यानबिन्दूपनिषद् में इस के संबंध में यह बात कहीं है कि यह नाद अर्मूत होता है, और वह वीणादंड, अर्थात् रीढ़ की हड्डियो के भीतर, सुषुम्ना नाड़ी के अर्न्तगत होता है।

अमूर्तो वर्तते नादो वीणादंड समुत्थितः।
शंख नादादिभिश्चैव मध्यमेव ध्वनिर्यथाः।।

– ध्यानबिन्दूपनिषद – 102

मूर्त नाद का अर्थ है जिसको हम कानों से सुन सकते हैं, वह ध्वनि। किसी एक चीज के दूसरी चीज पर आघात करने से जो कम्पन निर्माण होते हैं, उनसे मूर्त नाद की उत्पत्ति होती है। अमूर्त नाद को हम कानों से ग्रहण नहीं करते। वह ध्वनि कान बंद करने पर ही सुनायी देती है। वह बाह्य वातावरण में निर्माण नहीं होती। वह अंतराकाश में निर्माण होने वाली ध्वनि है। इसलिए उसको अनाहत ध्वनि कहते हैं। त्रिबंध युक्त प्राणायाम के दीर्घ अभ्यास का वह फल होता है। नाद की उत्पत्ति होने पर साधक को उसी

को सुनने में अपना मन लगाना चाहिए। इसी को नादानुसंधान या मनोलय का अभ्यास कहते हैं। वरोहोपनिषद् में इसको महत्व इस प्रकार वर्णन किया है –

इंद्रियाणां मनो नाथो मनोनाथस्तु मारूतः।
मरूतस्य लयो नाथस्तन्नाथं लयमाश्रय।।

– वरोहपनिषदः – 2 : 80

अर्थात इंद्रियो को मन के द्वारा वश किया जाता है मन को प्राणायाम के द्वारा तथा प्राण को लय अर्थात् नादानुसंधान के द्वारा। इसीलिए नादानुसंधान का महत्व है। इसके संबंध में हठयोग प्रदीपिका में कहा है कि जैसे ईधन में प्रवृत हुई आग ईधन को समाप्त करने पर स्वयं बुझ जाती है उसी प्रकार नाद को सुनने में लगा चित्त नाद के साथ शांत हो जाता है।

अध्याय – 2
कुण्डलिनी क्या है?

कैवल्य और विवेक ख्याति के अलावा योग की यह शायद सबसे अधिक महत्वपूर्ण श्रृखंला कही जा सकती हे, परंतु इतनी अधिक महत्वपूर्ण होते हुये भी यह संकल्पना अत्यंत अस्पष्ट और रहस्यमयी रही है। यह महज आश्चर्य ही है। ग्रंथों में जो वर्णन मिलते है उन से तो लगता है, कि वह शरीर का कोई अंग या अवयव हो किंतु प्रत्यक्ष में ऐसा कोई अंग दिखाई नहीं देता जिसके बारे में हम "यही कुण्डलिनी है" ऐसा कह सके इस पर यह कहा जा सकता है कि वह तो शक्ति स्वरूप है, वस्तु स्वरूप नहीं। इसको आधार शक्ति, परमशक्ति, वाचाशक्ति आदि शब्दों से कह सकते हैं। कुण्डलिनी के संबंध में एक विशेष बात यह है कि योग के सर्वप्रसिद्ध और प्रमुख दो ग्रंथो में, अर्थात भगवद्गीता में तथा पंतजलि के योगसूत्र में उसके संबंध में कोई उल्लेख नहीं मिलते। इससे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि शायद षट्चक्र, इड़ा, पिंगला एवं सुषुम्ना ये तीन नाड़ियां तथा कुण्डलिनी शक्ति ये सभी संकल्पनाएं मूलतः योग की न होकर तंत्र शास्त्र की थी। तंत्र से ही ये संकल्पनाए हठयोग में आयी होगी। हठयोग में इनका महत्व सर्वोपरि रहा।

कुण्डलिनी यद्यपि शक्तिवरूप भी हो, तो भी उसके स्थान का वर्णन हठयोग के ग्रंथों में मिलता है। हम सब लोगों में वह शक्ति सोई हुई या सुप्त अवस्था में रहती है मूलाधार चक्र में कंद, योनि या त्रिकोण नाम का एक अंग होता है वही कुण्डलिनी का स्थान है। इसका वर्णन शिवसंहिता में इस प्रकार किया गया है –

गुदाद् द्वयंगुलतश्चोर्ध्व मैढैकांगुलतस्त्वधः।
एवं चास्ति समं कंद समता चतुरंगुलम्।।

– शिवसंहिता – 5:74

पश्चिमाभिमुखी योनिः गुदमेढ्रांतरालगा।

तत्र कंदं समारख्यातं तत्रास्ति कुंडली सदा।। 5:74
संवेष्टय सकला नाडीः सार्धत्रिकुटिलाकृतिः।
मुखे निवेश्य सा पुच्छं सुषुम्णाविवरे स्थिता। 5:76

अर्थात् – गुदा से दो अंगुल ऊपर और जननेंद्रिय से एक अंगुल नीचे चार अंगुल लम्बा चौड़ा कंद विद्यमान होता है। उसी को योनि शब्द से कहते हैं। उसमें कुण्डलिनी साढ़े तीन फेर लगाकर सुषुम्ना नाड़ी के नीचे के छोर को अपने मुंह में पकड़कर सुप्त रहती है।

दर्शनोपनिषद में कंद को त्रिकोण शब्द से कहा है :–

त्रिकोणं मनुजानां तु सत्यमुक्तं हि सांकृते।
गुदान्तु द्वयंगुलादूर्ध्वं मेद्रान्तु द्वयंगुलादधः।।

– दर्शनोपनिषद् – 4:2

अन्य ग्रंथों में भी कंद का विस्तार से वर्णन मिलता है। इन सभी वर्णनो से ऐसा कह सकते हैं कि हमारे शरीर में मेरूदण्ड के नीचे कमर के हिस्से में जो एक त्रिकोणकृति हड्डी है, जिसको अंग्रेजी में सेंक्रम कहते हैं, वही हठयोग ग्रंथों में वर्णित 'कंद' है। वह ऊपर से चौड़ा तथा नीचे से संकरा होता है। उसका नीचे का छोर मूलाधार चक्र में होता है। इस 'त्रिकोण' का उल्लेख करते हुए कुण्डलिनी के स्थान का विस्तृत तथा निश्चित वर्णन षट्चक्र निरूपण में इस प्रकार किया गया है।

वज्राख्या वक्त्रदेशे विलसति सततं कर्णिका मध्यसंस्थं
कोणं तत् त्रेपुराव्यं तडिदिव विलसत्कोमलं कामरूपम्।
कंदर्पो नाम वायुर्निवसति सततं तस्य मध्ये समन्ताज्जीवेशो।
बंधुजीव प्रकरमभिहसन् कोटि सूर्य प्रकाशः।।

षट्चक्र निरूपणम् – 8

अर्थात् – वज्रा नाड़ी के आरम्भ में मूलाधार चक्र में त्रिकोण होता है। उसमें कंदर्प नाम का वायु होता है। इस त्रिकोण में स्वयंभू लिंग होता है, उसका वर्णन अगले 9 वें श्लोक में किया है। 'सेक्रम' के नीचे जो रीढ़ की अंतिम तीन हड्डिया एक दूसरे से जुड़ी हुई होती है, जिसको अंग्रेजी में "काक्सीक्स" कहते हैं, शायद स्वयंभू लिंग का तात्पर्य उसी कॉक्सीक्स से है, ऐसा कह सकते हैं।

तन्मध्ये लिंगरूपी द्रतकनकलाकोमलः पश्मास्यो ज्ञानध्यान प्रकाशः

प्रथम किसलयाकाररूपः स्वयंभू।
विद्युत्पूर्णेदुबिंब प्रकर करचयस्निग्ध संतानहासी काशीवासी विलासा विलसति सरिदावर्तरूपप्रकारः।। 9।। (ष. नि.)

अर्थात् – त्रिकोण में तप्त सुवर्ग के समान कांतिमान, श्यामवर्ण, पीछे की ओर मुख किया हुआ स्वयंभू शिवलिंग होता है। इस शिवलिंग के उपर कुण्डलिनी साढ़े तीन फेरे लगाकर सोई हुई रहती है, यह बात स्पष्ट रीति से अगले श्लोक में कही है।

तस्योर्ध्वे विसतंतुसोदरलसत्सूक्ष्मा जगन्मोहिनी।
ब्रम्हद्वारमुखं मुखेन मलरं संछादयन्ती स्वयम्।
शंखावर्तनिभा नवीनचपलामाला विलासास्यदा
सुप्ता सर्पसमा शिवोपरि लसत्सार्धत्रिवृत्ताकृतिः
।।10 (ष.नि.)

अर्थात् – उस स्वयंभू लिंग के उपर, सुषुम्ना नाड़ी का छोर अपने मुंह में लेकर साढ़े तीन फेरे लगाकर कुण्डलिनी सोयी हुई रहती है।

कुण्डलिनी का सुप्त अवस्था के कारण मनुष्य के चित्त में अज्ञान व्याप्त है। कुण्डलिनी शक्ति को जगाने से वह अपना कुटिल रूप त्याग कर सरल हो जाती है और सुषुम्ना के मध्य मार्ग से उपर की ओर अग्रसर होती है। उसके मार्ग में विद्यमान चक्रों का भेद करते हुए जब वह सहस्त्रार चक्र में स्थित परमशिव के साथ एकरूप होती है तब साधक को समाधि की अवस्था में परम ज्ञान होता है। इसका समग्र वर्णन योग के अनेक ग्रंथों में उपलब्ध है। केवल कुम्भक, अर्थात इच्छा के अनुसार कितनी भी देर तक श्वसन क्रिया को रोकने की शक्ति होना, यह कुण्डलिनी शक्ति के जागृत होने का एक लक्षण है।

कुण्डलिनी महाशक्ति की वैज्ञानिक व्याख्या

कुण्डलिनी शक्ति को अच्छी तरह समझने के लिए श्वास क्रिया और सुषुम्ना शीर्षक (मेडुला आफ लोंगलेटा) का विस्तृत अध्ययन आवश्यक है। पाश्चात्य वैज्ञानिक अभी तक इतना ही जान पायें हैं कि नाक से ली हुई सांस गले से होती हुई फुफ्फुसों (फेफड़ो) तक पहुंचती है। फेफड़ों के छिद्रो में भरे हुये रक्त को वायु शुद्ध कर देती है और रक्त परिसंचालन की गतिविधि शरीर में चलती रहती है।

किन्तु प्राणायाम द्वारा श्वसन क्रिया को बंद करके भारतीय योगियों ने

यह सिद्ध कर दिया है कि चेतना जिस प्राण–तत्व को धारण किये हुये जीवित है, उसके लिए श्वास क्रिया आवश्यक नहीं। सांस ली हुई हवा का स्थूल भाग ही रक्त शुद्धि का काम करता है, उसका सूक्ष्म भाग सुषुम्ना शीर्षक में अवस्थित इड़ा और पिंगला नाड़ियों के माध्यम से नाभि कंद स्थित चेतना को उद्दीप्त किये रहता है। गोरक्ष पद्धति के श्लोक 48 मे इस क्रिया को शक्तिचालिनी महामुद्रा, नाड़ी शोधन आदि नाम दिये हैं और लिखा है कि सामान्य अवस्था में इड़ा और पिंगला नाड़ियों का शरीर की जिस ग्रंथि या इंद्रिय से सम्बंध होता है, मनुष्य उसी प्रकार के विचाारों से प्रभावित होता रहता है, इस अवस्था में नाड़ियों का अपना कोई क्रम नहीं होता। किंतु जब विशेष रूप से (प्राणायाम) से प्राणवायु को धौंका जाता है तो इड़ा और पिंगला सम स्वर मे प्रवाहित होने लगती है। इस अवस्था के विकास के साथ–साथ नाभि कंद के प्रकाश स्वरूप गोला भी विकसित होने लगता है। उससे प्राण शक्ति का विद्युत शक्ति के समान निसृण होता है चूंकि सभी नाड़ियां इसी भाग से निकलती है इसलिए वह इस ज्योति गोले के संस्पर्श में होती है। सभी नाड़ियो में वह विश्वव्यापी शक्ति झरने से सारे शरीर में वह तेज 'ओजस' के रूप में प्रकट होने लगता है। इन्द्रियों में वही बल के रूप में, नेत्रों में चमक के रूप में परिलक्षित होता है इस प्राण शक्ति के कारण प्रबल आकर्षण शक्ति पैदा होती है। यह शक्ति नाभि प्रदेश में प्रस्फुटित होती है और चूंकि कटि प्रदेश में इसी के समीप है, इसलिए वह भाग अधिक शीघ्र और तेजी से प्रभावित होता है इसलिए यौन शक्ति केद्रों को नियंत्रण में रखना अधिक आवश्यक होता है। साधना की अवधि में इसीलिए संयम पर अधिक जोर दिया जाता है, जिससें कुण्डलिनी शक्ति का फैलाव ऊर्ध्वगामी हो जाये उसी से ओज की वृद्धि होती है।

वैज्ञानिक इस निष्कर्ष पर निकल आये है कि शरीर में विभिन्न ज्ञानेद्रियों के केंद्र स्थूल इंद्रिया नहीं वरन् उससे भी सूक्ष्म और संवेदन शील कोई स्थान शरीर में है, जिन्हें न तो यंत्रों के द्वारा पकड़ा जा सकता है और न स्थूल आखों से देखा जा सकता है वे अत्यंत शक्तिशाली, महत्वपूर्ण और अनेक रहस्यों से परिपूर्ण है। शरीर पिण्ड में उसके जीवकोश, रसायन हारमोन, जीन्स आदि की अपनी सुविस्तृत व्यवस्था है। यहां उसका उल्लेख संभव नहीं है चर्चा मात्र मेरूदण्ड की और उसके दोनों सिरों की (पोल्स) की हो रही है। यह क्षेत्र समग्र काया की तुलना में बहुत छोटा होते हुए भी इतना महत्वपूर्ण है कि उसे

योगाभ्यास की अतिमहत्वपूर्ण चारा कहा जाएं तो कुछ अत्युक्ति न होगी मानवी काया यों है तो ब्रह्मण्ड की अनुकृति पर उसे छोटे रूप में समझाने के लिए एक भूमण्डल मान लेने में भी बहुत ही ज्ञातव्य बातें हस्तगत हो जायेंगी। पृथ्वी अपने उत्तरी ध्रुव से अन्तरिक्षीय भण्डार में से अपने काम की वस्तुएं ग्रहण कर लेती है। यह उसका मुख है। मुख चाहे जो नहीं खाने लगता। जो उपयोगी होती है उन्हीं को स्वाद और स्वरूप के आधार पर पकड़ता और पेट में पहुंचाता है। उसी प्रकार अंतरिक्ष में मंडराती रहने वाली असंख्य शक्तियों में से पृथ्वी उन्हीं को पकड़ती है और अपने लोक की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए प्रयुक्त करती है। प्रयुक्त करने के बाद जो कचरा बच जाता है उसे मल द्वार से दक्षिण ध्रुव से निकाल बाहर करती है। पचे हुए उपयोगी अंश से ही उसकी आवश्यकताओं की पूर्ति हो जाती है। मानवीय शरीर भी इसी क्रिया का अनुसरण करता है उसका उत्तरी ध्रुव मस्तिष्क है और दक्षिणी ध्रुव वह जिसे मल–मूत्र स्थानों का मध्य भाग मूलाधार चक्र कहते हैं इन दोनों के मध्य एक प्रचण्ड शक्ति प्रवाह बहता रहता है जिसे कुण्डलिनी शक्ति कहते हैं।

पृथ्वी द्वारा खींचा गया अन्तरिक्षीय प्रवाह भूमध्य रेखा के साथ साथ चलता है। अन्तर्ग्रही शक्तियों का पृथ्वी पर प्रवाह किस प्रकार बहता है और उसकी क्षमता अन्यान्य क्षेत्रों में किस प्रकार काम करती है?इसकी जांच पड़ताल करने के लिए वैज्ञानिक इसी क्षेत्र में अपने विविध अन्वेषण करते रहते है। संसार की महत्वपूर्ण बेधशालाएं इसी भूमध्य रेखा पर बनाई गई है। इसी क्षेत्र के लम्बे पर्यवेक्षण से अनेकानेक रहस्यों का उद्घाटन हो सका है।

शरीर की भूमध्य रेखा मेरूदण्ड है। वह स्वयं तो अध्यात्म प्रयोगों की दृष्टि से आश्चर्यजनक है ही, उसके दोनों सिरे भी असाधारण है जिन्हें जादुई ही कह सकते हैं। मेरूदण्ड के शक्ति प्रवाह में तीन धाराएं बहती हैं, जिन्हें इड़ा पिंगला और सुषुम्ना कहा जाता है। बिजली की दो धाराएं होती है एक को निगेटिव और दूसरी को पौजीटिव कहते हैं। इन दोनो का जहां मिलन होता है, वहा तीसरा 'करेन्ट' बहने लगता है। इड़ा, पिंगला का जहां मिलन होता है वहीं से तीसरी धारा सुषुम्ना का उद्भव होता है इसी को शास्त्रकारों ने गंगा युमना के मिलन की सरस्वती कहा है और उस संगम को त्रिवेणी नाम दिया है। सरस्वती प्रत्यक्ष नहीं है। वह मिलन संगम पर पाताल से आकर मिलती है। इसी बात को यों भी कहा जा सकता है कि जिस प्रकार पीला

नीला रंग मिलाने से तीसरा रंग हरा बन जाता है, ठीक उसी प्रकार इस सुषुम्ना संगम को कहा जा सकता है। यह त्रिविधि संगम ऐसा है जिसे लक्ष्मी काली और सरस्वती के संगम की उपमा दी जा सकती है।

मेरूदण्ड संरचना का विश्लेषण करने पर उनमें उन प्रकार की रक्त वाहनियां भी पायी गई है और शक्ति धाराएं भी। वैज्ञानिक इड़ा प्रक्रिया को – ''सिम्पैथेटिक सिस्टम'' और पिंगला को ''पैरासिम्पैथेटिक सिस्टम'' कहते हैं। इन दोनों का उद्‌गम जिस कैलाश से है उसे मस्तिष्क मध्य में उपस्थित ''हाइपोथेलेमस'' कहते हैं। इसी के दो सिरे पीनियल और पिट्‌यूटरी मस्तिष्क में ही अवस्थित रहते हैं। इन दोनों को मिलाने वाली श्रृंखला ही हाइपोथेलेमस है। इसे सहस्त्रार चक्र कहा गया है। ब्रम्हरंध्र भी इसी के साथ जुड़ा हुआ है, जिसकी संगति ''कापर्स कैलोजम'' के समीप से बैठती है। चक्र वेधन, सहस्त्रार उन्नयन एवं मूलाधार का शक्ति उद्‌घाटन यह तीनों ही कुण्डलिनी जागरण की प्रक्रिया को पूर्ण कर लेने के लिए आवश्यक है। कहा जा चुका है कि मूलाधार मलमूत्र छिद्रों के मध्य है। इस स्थान की शल्य क्रिया करने पर जो नाड़ी गुच्छक पाया गया है उसे 'सेक्रलप्लेक्सस' कहते हैं इससे स्नायु प्रवाह माध्यम से प्रायः कामोत्तेजना उभरती रहती है और संतोनोत्पादन के लिए शुक्राणु डिम्बाणु प्रजनन अंगों में बनते रहते हैं यहीं से दाढ़ी, मूंछ, पौरूष, साहस, श्रमयोग्य कठोरता उभारने वाले हारमोन उत्पन्न होते हैं। योगाभ्यास में इसे अग्निकुण्ड, कुण्डलिनी निवास आदि का नाम दिया गया है।

मस्तिष्क मध्य में निवास करने वाले केंद्र में अप्रत्यक्ष रूप से काम करने वाले विद्युत उत्पादन केंद्र को सहस्त्रार के अतिरिक्त ''रेटीकुलर एक्टिवेंटिंग सिस्टम'' भी कहते हैं। इसे अति संवेदनशील विद्युत मापक यंत्रों की सहायता से ही मापा जा सकता हैं यहां क्षण–क्षण में विद्युत स्फुल्लिंग उभरते रहते हैं। इसे असली ह्रदय कहा जा सकता है। छाती में धड़कने वाला हृदय, रक्त को मात्र असली हृदय तक पहुंचाता है। सहस्त्रार चक्र का इससे सीधा संबंध है। उसे ब्रम्हरंध्र का उद्‌गम भी कह सकते हैं।

मूलाधार और सहस्त्रार को मिलाने वाला छोटे–छोटे घटकों से मिलकर बना मेरूदण्ड है। इसी को बोल–चाल की भाषा में ''रीढ़'' कहते हैं। स्पाइनल कार्ड इसके अंदर होता है। इसी के मध्य व दोनों ओर वे तीनों नाड़ियां शक्ति धाराएं बहती हैं, जिनका उल्लेख उपर इड़ा पिंगला के रूप में किया गया है। इन्हीं दोनों की मध्यवर्ती सुषुम्ना है। मेरूदण्ड मार्ग को 'इक्वेटोरियल

लाइन' विषुवत रेखा कहते हैं। किंतु इसका मध्यवर्ती प्रवाह "सेन्ट्रल केनाल (स्पाइनल कार्ड का केंद्रीय भाग) के नाम से जाना जाता है। यही सब मिलकर वैसी स्थिति बनती है जैसी कि पृथ्वी पर भूमध्य रेखा की है। ऐसे तो समस्त शरीर ही शक्ति पुंज है किंतु योग साधना से प्रचण्ड शक्ति का केंद्र उसी नाम को समझा जाना चाहिए जो मूलाधार से लेकर सहस्त्रार तक मेरूदण्ड माध्यम से शक्ति पुंज बनकर अवस्थित है।

कुण्डलिनी महाशक्ति को सुप्त सर्पिणी की उपमा दी गई है। कुण्डलिनी की सुप्त अवस्था के कारण ही मनुष्य के चित्त में अज्ञान व्याप्त है। कुण्डलिनी के जागरण के लिए हठयोग में जो विशेष उपाय बताये गये है उनमें सिद्धासन, पश्चिमोत्तान, मत्स्येन्द्रासन, महामुद्रा तथा मूलबंध, जालंधर बंध एवं उड्डियान बंध इन तीनों बंधों सहित भस्त्रिका प्राणायाम ये उपाय प्रमुख है। इन अभ्यासों में रीढ़ एवं गर्दन को आगे झुकाने से सुषुम्ना नाड़ी पर तनाव लाना, उदर गुहा में तनाव और दबाब निर्माण करना, तथा सीवनी पर, जहां कुण्डलिनी का स्थान है दबाव निमार्ण करना, यह कार्य होते हैं। इन सबसे कुण्डलिनी का प्रत्यक्ष जागरण किस प्रकार होता है, उस जागरण का स्वरूप क्या है, तथा उसके क्या परिणाम होते है, इन बातों का कोई वैज्ञानिक स्पष्टीकरण अभी उपलब्ध नहीं हुआ है।

कुंडलिनी महाशक्ति की पौराणिक व्याख्या

आत्म विद्या के विद्यार्थियों को यह तो विदित ही है कि यह मानवीय पिण्ड (शरीर) विश्व ब्रम्हाण का एक छोटा सा नमूना मात्र है। सूर्य चलता है और सौर मण्डल के ग्रह–उपग्रह उसकी परिक्रमा करते हैं। ठीक इसी प्रकार परमाणु भी अकेला नहीं होता, उसके साथ इलेक्ट्रोन, प्रोट्रोन, न्यूट्रान आदि की एक मण्डली रहती है जो 'न्युलियस' से प्रभावित होकर अपना कार्य उसी तरह चलाती है जिस तरह सौर मण्डल के साथ। विशाल वृक्ष का सारा ढांचा छोटे से बीज के भीतर पूरी तरह विद्यमान रहता है। मनुष्य का शरीर ही नहीं उसका स्वभाव, बुद्धि अन्तःकरण आदि महत्वपूर्ण सूक्ष्म चेतना संस्थान भी अति सूक्ष्म रज वीर्य में पूरी तरह "जीन्स" रूप से विद्यमान रहता है। ब्रम्हाण की विशाल व्यापकता को यदि हम बीज रूप में देखना चाहें तो उसे मानव शरीर की सूक्ष्मता का विश्लेषण करते हुए भली प्रकार जान सकते हैं। जान ही नहीं सकते उस व्यक्तिगत सूक्ष्मता का विश्व गरिमा के साथ जुड़े हुए अविच्छिन्न सम्बन्ध का लाभ भी उठा सकते हैं। यह सम्बन्ध सूत्र यदि प्रसुप्त

न रह कर जाग्रत हो जायें, दुर्बल न रह कर परिपक्व हो जायें तो विश्व व्यापी शक्ति भण्डार से अपने लिए आवश्यक वस्तुयें प्रचुर मात्रा में उपलब्ध आकर्षित कर सकता है इतना ही नहीं अपनी दुर्बल इकाई को बनाकर उससे विराट् विश्व के जड़ चेतना संस्थान को प्रभावित कर सकता है।

साधना और तपश्चर्या वस्तुतः इसी अति महत्वपूर्ण विज्ञान का नाम है। प्राचीन काल में तप साधना के द्वारा जिनने जो वरदान पाये थे उनके इतिहास, पुराण विस्तार पूर्वक हम पढ़ते सुनते हैं। इन दिनों वैसी उपलब्धियां प्रत्यक्ष न होने से वे बातें कपोल कल्पना जैसी लगती हैं, पर वस्तुतः बात ऐसी नहीं है। यदि ठीक विधि से ठीक उपकरणों द्वारा उस विज्ञान को कार्यान्वित किया जाये तो पूर्व काल की कपोल कल्पना समझी जाने वाली बातों को आज भी प्रत्यक्ष किया जाना सम्भव हैं।

तपस्वियों द्वारा साधना के फलस्वरूप प्राप्त किये वरदान और कुछ नहीं विराट् विश्व की अन्तरंग शक्तियों में से कुछ का इच्छानुकूल उपयोग कर सकने की क्षमता ही समझी जानी चाहिए इसी प्रकार शाप वरदान दे सकने की क्षमता को अपनी व्यक्तिगत इकाई को इतना प्रबल बना लेना चाहिए जिससे मनुष्यों या पदार्थो को अपनी संकल्प शक्ति के प्रहार से अभीष्ट दिशा में मुड़ने के लिए विवश किया जा सके। देवताओं का अस्तित्व इस विराट् विश्व में उनकी विशालता के अनुरूप व्यापक भी हो सकता है? पर हम से देवताओं के जिस अंश का प्रत्यक्ष और सीधा सम्बन्ध है वह अंश अपने भीतर ही 'शक्ति बीजों' के रूप में विद्यमान रहता है। साधना का प्रयोजन इन्हीं शक्ति बीजों को जाग्रत और समर्थ बनाना है। समष्टिगत देवताओं का आर्शीवाद, वायु, वर्षा, धूप, शीत, दुर्भिक्ष, सुभिक्ष आदि के रूप में समग्र रूप से बरसता है और उससे सबको समान लाभ मिलता है। व्यक्तिगत वरदान आर्शीवाद देने वाले देवता अपने शरीर में ही विद्यमान रहते हैं। विविध–विधि साधनाओं द्वारा उन्हीं को स्वयं समर्थ बनाया जाता है। और अपनी पात्रता एवं तपस्या के अनुरूप उन्हीं से वह लाभ पाया जाता है जिसे 'अलौकिक चमत्कारी' देव प्रदत्त, वरदान के रूप में आश्चर्य के साथ सुना और देखा जाता है।

इस अलौकिक और अद्भुत चमत्कार प्रस्तुत करने वाले शक्ति को ही योगियों और तपस्वियों ने कुंडलिनी नाम दिया है और उसे जीवन चेतना का आधार बताया है। उसी से जीवधारियों को शक्ति और तेजस्विता मिलती है,

सामान्य स्थिति में व्यक्ति की कुण्डलिनी शक्ति जितनी मात्रा में स्पन्दन करती है, उतना ही प्रभाव, उस मनुष्य का होता है। उसी के आधार और अनुपात से लोगों को सुख–दुःख आदर सम्मान, लोक प्रतिष्ठा आदि मिलती है। इसलिए कहना न होगा कि मनुष्य के स्थूल जीवन की नहीं व्यावहारिक जीवन की सफलता और समुन्नति का आधार भी कुण्डलिनी शक्ति ही है।

पांचों प्रकार की ज्ञान इन्द्रियाँ भी बिजली के तारों की तरह इसी महाशक्ति से जुड़ गई हैं, इसलिए वह सूक्ष्म चेतना होने पर भी संकल्प रूप में आ गई है। चेतन होने के कारण चित्त, जीने से जीव मनन करने से मन और बोध प्राप्त करने से चेतना को बुद्धि रूप में देखा जाता है। अहंकार रूप में उसे ही तुर्यष्टक कहते हैं पर इन विभिन्न नामों का एक ही आधार है चेतना। इस चेतना की, शक्तियों की मूलाधार शक्ति को ही कुण्डलिनी कहा जाता है। ज्ञान और अनुभव के पांचों कोश बीज रूप से इसी में पाये जाते हैं, इसलिए कुण्डलिनी शक्ति जाग्रत कर लेने वाला इन्द्रियों को उसी तरह वश में कर लेता है, जिस तरह लगाम लगे हुए घोड़ों को वश में कर लिया जाता है। जिसने इन्द्रियों को जीत लिया संसार में उसको किसका भय। जो निर्भय हो गया वहीं विश्व–विजेता हो गया।

कुण्डलिनी की इन्हीं महान् सामर्थ्यो को जान कर ही योग शास्त्रों में उसे सर्वाधिक महत्व दिया गया। इसके साथ अनेक प्रकार की कल्पनायें जोड़ दी गई हैं।अनेक प्रकार से उसका वर्णन किया जाता है। सीधे सरल शब्दों में कुण्डलिनी वह दिव्य मानस तेज हैं, जो आत्म–चेतना से परिसिक्त है और शरीर भर में व्याप्त है। साधना के फलस्वरूप यह तेज सिमट कर ध्यान के समय ज्योति बन कर देह में कार्य करने लगता है।

कुण्डलिनी शक्ति को और अच्छी तरह समझने के लिए श्वास क्रिया और सुषुम्ना शीर्षक (मेडुला आफ लोंगलेटा) का विस्तृत अध्ययन आवश्यक है। पाश्चात्य वैज्ञानिक अभी तक इतना ही जान पायें हैं कि नाक से ली हुई साँस गले से होती हुई फुफ्फुसों (फेफड़ों) तक पहुंचती है। फेफड़ों के छिद्रों में भरे हुये रक्त को वायु शुद्ध कर देती है और रक्त–परिसंचालन की गतिविध शरीर में चलती रहती है।

किन्तु प्राणायाम द्वारा श्वास क्रिया को बन्द करके भारतीय योगियों ने यह सिद्ध कर दिया है कि चेतना जिस प्राण–तत्व को धारण किये हुए जीवित है, उसके लिए श्वास–क्रिया आवश्यक नहीं। साँस ली हुई हवा का स्थूल

भाग ही रक्त शुद्धि का काम करता है, उसका सूक्ष्म भाग सुषुम्ना शीर्षक में अवस्थित इड़ा और पिंगला नाड़ियो के माध्यम से नाभि–कन्द स्थिति चेतना को उद्दीप्त किये रहता है। 'गोरक्ष पद्धति' में श्लोक 48 में इस क्रिया को शक्तिचालन महामुद्रा, नाड़ी शोधन आदि नाम दिये हैं और लिखा है कि सामान्य अवस्था में इड़ा और पिंगला–नाड़ियों का शरीर की जिस ग्रन्थि या इन्द्रिय से सम्बन्ध होता है, मनुष्य उसी प्रकार के विचारों से प्रभावित होता रहता है, इस अवस्था में नाड़ियों के स्वतः संचालन का अपना कोई क्रम नहीं होता। किन्तु जब विशेष रूप (प्राणायाम) से प्राणवायु को घौंका जाता है तो इड़ा (गर्म नाड़ी) और पिंगला (ठण्डी–नाड़ी) सम–स्वर में प्रवाहित होने लगती हैं। इस अवस्था के विकास के साथ–साथ नाभि–कन्द में प्रकाश स्वरूप गोला भी विकसित होने लगता है। उससे प्राण शक्ति का विद्युत शक्ति के समान निसृण होता है चूँकि सभी नाड़ियाँ इसी भाग से निकलती हैं इसलिए वह इस ज्योति गोले के संस्पर्श में होती हैं। सभी नाड़ियों में वह विश्वव्यापी शक्ति झरने से सारे शरीर में वह तेज 'ओजस' के रूप में प्रकट होने लगता है। इन्द्रियों में वही बल के रूप में, नेत्रों में चमक के रूप में परिलक्षित होता है। इस प्राण–शक्ति के कारण प्रबल आकर्षण शक्ति पैदा होती है।

यह शक्ति नाभि प्रदेश में प्रस्फुटित होती है और चूँकि कटि प्रदेश भी उसी के समीप है, इसलिए वह भाग अधिक शीघ्र और तेजी से प्रभावित होता है। इसलिए यौन–शक्ति केन्द्रों को नियन्त्रण में रखना अधिक आवश्यक होता है। साधना की अवधि में संयम पर इसीलिए अधिक जोर दिया जाता है, जिससे कुण्डलिनी शक्ति का फैलाव ऊर्ध्वगामी हो जाये उसी से ओज की वृद्धि होती है।

स्थूल रूप से शरीर के स्नायु मंडल को ही पाश्चात्य वैज्ञानिक देख पाये हैं, वे अभी तक नाड़ियों के भीतर बहने और गतिविधियों को मूलरूप से प्रभावित करने वाले प्राण प्रवाह को नहीं जान सके। स्थूल नेत्रों से उसे देखा जाना सम्भव भी नहीं है। उसे भारतीय योगियों ने चेतना के अति सूक्ष्म–स्तर का वेधन करके देखा। योग शिखोपनिषद में 101 नाड़ियों का वर्णन करते हुए शास्त्रकार ने सुषुम्ना शीर्षक को पर नाड़ी बताया है। यह कोई नाड़ी नहीं है वरन् इड़ा पिंगला के समान विद्युत–प्रवाह से उत्पन्न हुई एक तीसरी धारा है जिसका स्थूल रूप से अस्तित्व नहीं भी है और सूक्ष्म रूप से इतना व्यापक एवं विशाल है कि जीव की चेतना जब उसमें से होकर भ्रमण करती है तो

ऐसा लगता है कि वह किसी आकाश गंगा में प्रवाहित हो रहा है। वहां से विशाल ब्रह्माण्ड की झांकी होती है। अन्तरिक्ष में अवस्थित अगणित सूर्य, चन्द्रमा, ग्रह–नक्षत्र की स्थिति समझने और विश्व–व्यापी हलचलों को नाद रूप में सुनने–समझने का अलभ्य अवसर, जो किसी चन्द्रयान या राकेट के द्वारा भी सम्भव नहीं है, इसी शरीर में मिलता है। उस स्थिति का वर्णन किया जाये तो प्रतीत होगा कि कुछ स्थूल और सूक्ष्म इस संसार में विद्यमान् है उस सब के साथ सम्बन्ध मिला लेने और उनका लाभ उपलब्ध करने की क्षमता उस महान् आत्म–तेज में विद्यमान् है, जो कुण्डलिनी के भीतर बीज रूप में मौजूद है।

सुषुम्ना नाड़ी (स्पाइनलकार्ड) मेरूदण्ड में प्रवाहित होती है और ऊपर मस्तिष्क के चौथे खोखले भाग (फोथविन्ट्रिकल) में जाकर सहस्त्रार चक्र में उसी तरह प्रवष्टि हो जाती हैं जिस तरह की तालाब पानी मे से निकलती हुई कमल नाल से शत–दल कमल विकसित हो उठता है। सहस्त्रार चक्र ब्रह्मण्ड लोक का प्रतिनिध है, वहां ब्रम्हा की सम्पूर्ण विभूति–बीज रूप से विद्यमान् है और कुण्डलिनी की ज्वाला वहीं जाकर अन्तिम रूप से जा ठहरती है, उस स्थिति में निरन्तर मधुपान का सा, सम्भोग की तरह का सुख (जिसका कभी अन्त नहीं होता) है, उसी कारण कुण्डलिनी शक्ति से ब्रम्हा प्राप्ति होना बताया जाता है।

कुण्डलिनी का महत्व इसी शरीर में परिपूर्ण शक्ति और सामर्थ्य का स्वामी बन कर आत्मा की अनुभूति और ईश्वर दर्शन प्राप्त करने से निःसन्देह बहुत अधिक बढ़ जाता है। पृथ्वी का आधार जिस प्रकार शेष भगवान् को मानते हैं, उसी प्रकार कुण्डलिनी शक्ति पर प्राणि मात्र का जीवन अस्तित्व टिका हुआ है। सर्प के आकार की वह महाशक्ति ऊपर जिस प्रकार मस्तिष्क में अवस्थित शून्य–चक्र से मिलती है, उसी प्रकार नीचे वह यौन–स्थान में विद्यमान् कुण्डलिनी के ऊपर टिकी रहती है। प्राण और अपान वायु के धौंकने से वह धीरे–धीरे मोटी, सीधी, सशक्त और परिपुष्ट होने लगती हैं साधना की प्रारम्भिक अवस्था में यह क्रिया धीरे–धीरे होती है, किन्तु साक्षात्कार या सिद्धि की अवस्था में वह सीधी हो जाती है। और सुषुम्ना का द्वार खुल जाने से शक्ति का स्फुरण वेग से फूट कर सारे शरीर में विशेष रूप से मुखाकृति में फूट पड़ता है। कुण्डलिनी जागरण दिव्य ज्ञान, दिव्य अनुभूति और अलौकिक सुख का सरोवर इसी शरीर में मिल जाता है।

सुषुम्ना नाड़ी का रूका हुआ छिद्र जब खुला जाता है तो साधक को एक प्रकार अत्यन्त मधुर नाद सुनाई देने लगता हैं। यह ध्वनि प्रारम्भ में मेघ के गर्जन, वर्षा समुद्र की हहराहट, घण्टा, झाँझ, वीणा और भ्रमर गुंजार के तुल्य विकसित होती है, यही बाद में अनाहत नाद में परिणित हो जाता है। नाभि से 4 अंगुल ऊपर यह आवाज सुनाई देती है, उसे सुनकर चित्त उसी प्रकार मोहित होता है। जिस प्रकार वेणुनाद सुन कर सर्प सब कुछ भूल जाता है। अनाहत नाद से साधक के मन पर चढ़े हुए जन्म–जन्मान्तरों के कुसंस्कार छूट जाते हैं।

कुण्डलिनी महाशक्ति को तन्त्र–शास्त्रों में द्विमुखी सर्पिणी कहा गया है। उसका एक मुख मल–मूत्र इन्द्रियों के मध्य मूलाधार चक्र में है। दूसरा मुख मस्तिष्क के मध्य ब्रम्ह रन्ध्र में हैं। पृथ्वी के उत्तरी ध्रुवों में सन्निहित महान् शक्तियों का परस्पर आदान प्रदान निरन्तर होता रहता है, इसी से इस पृथ्वी का सारा क्रिया–कलाप यथाक्रम चल रहा है। इसी प्रकार कुण्डलिनी शक्ति के ऊपर और नीचे के जननेन्द्रिय और मस्तिष्क अथःऊर्ध्व केन्द्रों की शक्तियों का निरन्तर आदान–प्रदान होता रहता है। यह संचार क्रिया मेरू–दण्ड के माध्यम से होती है। रीढ़ की हड्डी इन दोनों केन्द्रों को परस्पर मिलाने का काम करती है। वस्तुतः स्थूल कुण्डलिनी का महासर्पिणी स्वरूप मूलाधार से लेकर मेरू–दण्ड समेत ब्रम्ह–रन्ध्र तक फैले हुए सर्पाकृत कलेवर में ही पूरी तरह देखी जा सकती है। ऊपर नीचे मुड़े हुए दो महान् शक्तिशाली केन्द्र चक्र ही उसके आगे–पीछे वाले दो मुख हैं।

मेरू–दण्ड पोला है, उसके भीतर जो कुछ है, उसकी चर्चा शरीर शास्त्र के स्थूल प्रत्यक्ष दर्शन के आधार पर दूसरे ढंग से की जा सकती हैं शल्य क्रिया द्वारा जो देखा जा सकता है, वह रचना क्रम दूसरा है। हमें सूक्ष्म प्रक्रिया के अन्तर्गत योग–शास्त्र की दृष्टि से इस परिधि में सन्निहित दिव्य शक्तियों की चर्चा करनी है। योगशास्त्र के अनुसार मेरू–दण्ड में एक ब्रम्हा नाड़ी है और उसके अन्तर्गत इड़ा और पिंगला दो अन्तर्गत शिरायें गतिशील हैं। यह नाड़ियाँ रक्त वाहिनी शिरायें नहीं समझी जानी चाहिए। वस्तुतः ये विद्युत धारायें हैं। जैसे बिजली के तार में ऊपर एक रबड़ का खोल चढ़ा होता है और उसके भीतर जस्ते तथा ताँबे का ठंडा गरम तार रहता है, उसी प्रकार इन नाड़ियों को समझा जाना चाहिए। ब्रम्हा–नाड़ी रबड़ का खोल हुआ, उसके भीतर इड़ा और पिंगला ठंडे–गरम तारों की तरह हैं। इनका स्थूल

कलेवर या अस्तित्व नहीं हैं। शल्य–क्रिया द्वारा यह नाड़ियाँ नहीं देखी जा सकतीं। इस रचना क्रम को सूक्ष्म विद्युत धाराओं की दिव्य रचना ही कहना चाहिए।

मस्तिष्क के भीतरी भाग में ये कतिपय 'कोष्टकों के अन्तर्गत भरा हुआ मज्जा भाग ही देखने को मिलेगा। खुर्दबीन से और कुछ देखा नहीं जा सकता पर सभी जानते हैं, उस दिव्य संस्थान के नगण्य से दीखने वाले घटकों के अन्तर्गत विलक्षण शक्तियाँ भरी पड़ी हैं। मनुष्य का सारा व्यक्तित्व, सारा चिन्तन, सारा क्रिया कलाप और सारा शारीरिक, मानसिक अस्तित्व इन घटकों के ऊपर ही अवलम्बित रहता है। देखने में सभी का मस्तिष्क लगभग एक जैसा दिखेगा पर उसकी सूक्ष्म स्थिति में पृथ्वी, आकाश जैसा अन्तर दीखता है, उसके आधार पर व्यक्तित्वों का घटिया–बढ़िया होना सहज ही आंका जा सकता है। यही सूक्ष्मता कुण्डलिनी के सम्बन्ध में व्यक्त की जा सकती है। मूलाधार, सहस्त्रार, ब्रम्हा–नाड़ी, इड़ा, पिंगला उन्हें शल्य क्रिया द्वारा नहीं देखा जा सकता। यह सारी दिव्य रचना ऐसी सूक्ष्म है, जो देखी तो नहीं जा सकती पर उसका अस्तित्व प्रत्यक्ष अनुभव किया जा सकता है।

मूलाधार में अवस्थित कुण्डलिनी महाशक्ति मलद्वार और जननेन्द्रिय के बीच लगभग चार अंगुल खाली जगह में विद्यमान बताई जाती हैं योग शास्त्र के अनुसार इस स्थान पर वहीं गहरे में एक त्रिकोण परमाणु पाया जाता हैं। यों सारे शरीर में स्थिति कण गोल बताये जाते हैं पर यही एक तिकोना कण है यहां एक प्रकार का शक्ति भ्रमर है। शरीर में प्रवाहित होने वाली तथा मशीनों से संचारित बिजली की गति का क्रम यह है कि वह आगे बढ़ती है फिर तनिक पीछे हटती है और उसी क्रम से आगे बढ़ती पीछे हटती हुई अपनी अभीष्ट दिशा में दौड़ती चली जाती हैं। किन्तु मूलाधार स्थिति त्रिकोण कण के शक्ति भंवर में सन्निहित बिजली गोल घेर में पेड़ से लिपटी हुई बेल की तरह घूमती हुई संचारित होती है। यह संयम क्रम प्रायः 3।। लपेटों का है। आगे चल कर यह विद्युत धारा इस विलक्षण गति को छोड़ कर सामान्य रीति से प्रवाहित होने लगती है।

यह प्रवाह निरन्तर मेरूदण्ड मे होकर मस्तिष्क के उस मध्य बिन्दु तक दौड़ता रहता है, जिसे ब्रम्हा–रन्ध्र या सहस्त्रार कमल कहते हैं। इस शक्ति केन्द्र का मध्य अणु भी शरीर के अन्य अणुओं से भिन्न रचना का है। वह गोल न होकर चपटा है। उसके किनारे चिकने न होकर खुरदरे हैं – आरी के दांतों

से उस खुरदरेपन की तुलना की जा सकती है। योगियों का कहना है कि उन दांतों की संख्या एक हजार है। अलंकारिक दृष्टि से इसे एक ऐसे कमल पुष्प की तरह चित्रित किया जाता है जिसमें हजार पंखुरियां खिली हुई हों। इस अलंकार के आधार पर ही इस अणु का नामकरण 'सहस्त्रार कमल' किया गया है।

सहस्त्रार कमल का पौराणिक वर्णन बहुत ही मनोरम एवं सारगर्भित है। कहा गया है कि क्षीरसागर में विष्णु भगवान् सहस्त्र फन वाले शेषनाग पर शयन कर रहे हैं। उनके हाथ में शंख, चक्र, गदा, पद्म हैं। लक्ष्मी उनके पैर दाबती हैं। कुछ पार्षद उनके पास खड़े हैं। क्षीरसागर मस्ष्तिक में भरा हुआ, भूरा चिकना पदार्थ ग्रेटमैटर है। हजार फन वाला सर्प यह चपटा खुरदरा ब्रम्ह–रन्ध्र स्थित विशेष परमाणु है। मनुष्य शरीर में अवस्थित ब्रम्हा–सत्ता का केन्द्र यहीं है। इसी से यहां विष्णु भगवान का निवास बताया गया है। यह विष्णु सोते रहते हैं। अर्थात् सर्वसाधारण में होता तो ईश्वर का अंश समान रूप से है पर वह जाग्रत स्थिति में नहीं देखा जाता। आमतौर से लोग घृणित, हेय, पशु–प्रवृत्तियों जैसा निम्न–स्तर का जीवन यापन करते हैं। उसे देखते हुए लगता है कि इनके भीतर या तो ईश्वर है ही नहीं–अथवा यदि है तो वह प्रसुप्त स्थिति में पड़ा है। जिसका ईश्वर जाग्रत होगा उसकी विचारणा, क्रियाशीलता आकांक्षा एवं स्थिति उत्कृष्ट स्तर की दिखाई देगी वह प्रबुद्ध और प्रकाशवान् जीवन जी रहा है, अपने प्रकाश से स्वयं ही प्रकाशवान् न हो रहा होगा वरन् दूसरों को भी मार्ग–दर्शन कर सकने में समर्थ हो रहा होगा। मानव तत्व की विभूतियां जिसमें परिलक्षित न हो रहीं हैं, जो शोक–संताप, दैन्य दारिद्र और चिन्ता–निराशा का नारकीय जीवन जी रहा हो, उसके बारे में यह कैसे कहा जाये कि उसमें भगवान् विराजमान हैं। फिर यह भी तो नहीं कहा जा सकता कि उसमें ईश्वर नहीं है। हर जीव ईश्वर का अंश है और उसके भीतर ब्रह्म सत्ता का अस्तित्व विद्यमान् भी है।

इस विसंगति की संगति मिलाने के लिए यही कहा जा सकता है कि उसमें भगवान् है तो पर सोया पड़ा है। क्षीर जैसी उज्जवल विचारणाओं के सागर में भगवान् निवास करते हैं। क्षीर सागर ही उनका लोक है। जैसे मस्तिष्क में क्षीर जैसी धवल स्वच्छ, उज्जवल प्रवृत्तियां, मनोवृत्तियां भरी पड़ी हों समझना चाहिए कि उसका अन्तरंग क्षीरसागर है और उसे भगवान् का लोक ही माना जायेगा। क्षीरसागर में सहस्त्र फन वाले शेषनाग पर विष्णु

भगवान् के शयन करते रहने का यही पौराणिक रहस्य है।

विष्णु के हाथ चार आयुध। शंख अर्थात् ध्वनि, वाक् शक्ति, दूसरों को जगाने–उठाने एवं प्रभावित करने की क्षमता। चक्र अर्थात् गतिशीलता, क्रिया, स्थिति के अनुरूप परिवर्तन कर सकने की शक्ति। गदा अर्थात् प्रताड़ना, अवांछनीय, अनुपयुक्त परिस्थितियों को दबाने–मिटाने एवं सुधारने की सामर्थ्य। पद्म अर्थात् सौन्दर्य, शोभा; सुगन्ध, मधुरता, सौम्यता, सज्जनता सहृदयता, उदारता, संयमशीलता आदि सद्गुणों का बाहुल्य। विष्णु भगवान के चार हाथों में यह चार आयुध हैं। भगवान अपने साथ यह विशेषतायें धारण किये हैं। जिनका भगवान जाग्रत, सक्रिय होगा, उनमें उपरोक्त चारों विशेषतायें भी प्रत्यक्ष परिलक्षित होंगी। लक्ष्मी विष्णु की पत्नी है। जहां भगवान् रहेगा, वहां विभूतियां, सिद्धियां, विशेषतायें, सफलतायें, सद्भावनायें प्रचुर परिमाण में दृष्टिगोचर होगी। लक्ष्मी अर्थात् विभूति। वह विष्णु की पत्नी है। महापुरूषों के पास महान विभूतियां भी प्रस्तुत रहती हैं। दरिद्रता तो दुर्जनों के हिस्से आई हैं, सज्जन अपरिग्रही हो सकते हैं, यह उनकी स्वेच्छा, सुविधा एवं अभिरूचि है। वैसे कोई अभाव उनके ऊपर थोपा हुआ नहीं होता।

नारद हयग्रीव आदि दूसरे पार्षदों की उपस्थिति का आधार यह है कि विष्णु और लक्ष्मी के साथ–साथ अनेक दैवी शक्तियां भी सहायता के लिए उपस्थित रहती हैं।सात्विक शक्तियों के ज्ञान–विज्ञान और वर्चस्व के प्रतीक नारद माने जाते हैं और बल, पराक्रम, पुरूषार्थ, वैभव, साहस एवं सकाम महत्ता के प्रतिनिध हयग्रीव हैं। सतोगुण का बाहुल्य और रजोगुण का सान्निध्य सदा विष्णु और लक्ष्मी की उपस्थिति के साथ जुड़ा रहेगा। जो ईश्वर भक्त, आस्तिक एवं आत्मदर्शी है, उसे विष्णु लक्ष्मी, पार्षद, क्षीरसागर, शेषनाग जैसी दिव्य सत्ताओं को अपने अन्तरंग में प्रतिष्ठित देखने का अवसर मिलेगा। उसके प्रबुद्ध मस्तिष्क में उपरोक्त सारी विशेषतायें विद्यमान रहेंगी। उसका व्यक्तित्व प्रकाशमान अनुकरणीय एवं ऐतिहासिक चिर–स्मरणीय बनकर रहेगा। उसकी उत्कृष्ट विचारणा एवं आदर्श क्रियाशीलता उसे नर–पशु के स्तर से निकाल कर नर–नारायण की तरह पूजार्ह बनाकर रहेगी।

कुण्डलिनी के ऊर्ध्व मुख ब्रह्म–रन्ध्र स्थित सहस्त्रार कमल के आधार पर शेषशायी विष्णु की अलंकारिक गाथा का रहस्य बहुत गम्भीर है,उसमें बताया गया है ऊर्ध्व मुख सहस्त्रार कमल यदि जाग्रत हो सके तो व्यक्ति अपने भीतर विष्णु और उसके समस्त वैभव कलेवर को अपने साथ जुड़ा, गुंथा देख सकता

है और सिद्ध–पुरूषों की तरह महामहिम जीवन–यापन कर सकता है।

कुण्डलिनी के अधोमुख मूलाधार चक्र के साथ समुद्र–मन्थन की पौराणिक गाथा जुड़ी हुई है। सुर और असुरों ने मिलकर समुद्र मथा था और एक से बढ़कर महत्वपूर्ण चौदह रत्न प्राप्त किये थे। इस गाथा में पौराणिक उपाएयानकार ने कुण्डलिनी की गरिमा ही प्रकट की है।

सुर और असुर दो वर्ग माने गये हैं। इनकी प्रकृति भिन्न है। दिति–अदिति दो माताओं के पुत्र होने के कारण इनमे कुछ भेद भी है पर पिता एक होने के कारण वे एक ही अंश वंश के तथा परस्पर पूरक है। सुर–गुरू बृहस्पति और असुर गुरू शुक्राचार्य दोनों ही देव थे। दोनों की योग्यता, तपस्या एवं दूरदर्शिता असाधारण थी। प्रक्रिया में थोड़ा अन्तर अवश्य था पर थे दोनों ही अपने स्थान पर महत्वपूर्ण। सुर गुरू बृहस्पति ज्ञान मार्गी थे, उनका सम्प्रदाय योग को प्रधानता देता था और उनके अनुयायी दक्षिण मार्गी कहलाते थे। असुर गुरू शुक्राचार्य कर्ममार्गी थे; उनका सम्प्रदाय तन्त्र को प्रधानता देता था और उनके अनुयायी बाम–मार्गी कहलाते थे। आगम और निगम, वेद और तन्त्र दोनों की अपनी महत्ता है। ज्ञान और कर्म एक दूसरे के पूरक हैं। सुर और असुरों की सत्ता एक दूसरे की पूरक हैं। पर समन्वय की पथ छोड़ने वाले एक ही पन्थ परिवार के लोग दुराग्रह के कारण टकराते रहते हैं, सो अतिवादिता और उग्र दुराग्रह का दौर जब चला तो सुर, असुर भी टकराने लगे। देवासुर संग्राम के बहुत कथानक पुराणों में पाये जाते हैं पर उनके सहयोग पूर्ण क्रियाकलापों का भी सर्वथा अभाव नहीं है। समुद्र–मन्थन दोनों ने मिलकर किया था। प्रजापति ने परस्पर कलह से उन्हें दिन–दिन दुर्बल होते जाते देख कर परामर्श दिया कि वे सहयोग का महत्व समझें और मिल–जुलकर काम करें। उन्होंने परामर्श माना और समुद्र–मन्थन का पुरूषार्थ करने के लिए तैयार हो गये। ज्ञान और कर्म का समन्वय ही सुर–असुर सम्मिलन है। विष्णु को ज्ञान का और शिव को कर्म का प्रतीक माना गया है। सुरों का उपास्य विष्णु और असुरों का उपास्य शिव माना जाता रहा है। यह तथ्य कुण्डलिनी महाशक्ति के सुविस्तृत विज्ञान में बहुत ही स्पष्ट है।

मस्तिष्क के मध्य भाग में अवस्थित सहस्त्रार कमल में शेषशायी विष्णु भगवान् अवसिति है और अधः अवस्थित मूलाधार चक्र के अधिपति शिव हैं। शिव चरित्र में कामदेव द्वारा शिव को उद्धीप्त करने और उनके द्वारा तीसरा नेत्र खोलकर कामदेव को जला डालने वाली कथा प्रख्यात है। कुण्डलिनी

जननेन्द्रिय केन्द्र के समीप होने से अपने निकटवर्ती क्षेत्र को प्रभावित करती है, तलदर्शी उस अपन्यय को ज्ञान नेत्र खोलकर नियन्त्रित कर लेते हैं। एक पौराणिक कथा इसी सन्दर्भ में यह भी है कि शिव के काम पीड़ित होने पर उनकी जननेन्द्रिय के 118 टुकड़े विष्णु ने कर डाले और वे जहां भी गिरे वहां ज्योतिर्लिंगों की स्थापना हुई। द्वादश ज्योतिर्लिंगों का उद्‌भव उसी प्रकार हुआ। वासना को ज्योति में बदला जा सकता है। इस कथानक का यही मर्म है।

कुण्डलिनी महाशक्ति का स्वरूप और आधार :

भारतीय योग साधन का मुख्य उद्‌देश्य जीवन्मुक्त स्थिति को प्राप्त करना हैं अभी तक प्राणियों के विकास को देखते हुए सबसे उंची श्रेणी मनुष्य की है, क्योंकि उसको विवेक और ज्ञान के रूप में ऐसी शक्तियां प्राप्त हुईहैं, जिनसे वह जितना चाहे उंचा उठ सकता है और कैसा भी कठिन कार्य हो उसे अपनी अन्तरंग शक्ति से पूरा कर सकता है। संसार के अधिकांश मनुष्य जीवन के बाह्य पक्ष को ही साधने का प्रयत्न करते हैं और प्रत्येक कार्य को सम्पन्न करने के लिए धन बल, शरीर बल तथा बुद्धिबल का प्रयोग करने के मार्ग को ही आवश्यक मानते है। इन तीन बलों के अतिरिक्त संसार में महान कार्यो को करने के लिए जिस आत्मबल की आवश्यकता होती है, उसके विषय में शायद ही कोई कुछ जानता हो, पर वास्तविकता यही है कि संसार में आत्मबल ही सर्वोपरि है और उसके सामने कोई और 'बल' कुछ विशेष महत्व नहीं रखता तथा न ही इस बल के आगे टिक ही सकता है। इस बल को अर्जित करने के लिए योग साधना द्वारा आत्मोत्कर्ष का पथ अपनाना पड़ता है।

जो लोग अपने जीवन ध्येय को प्राप्त करने के लिए अपनी निर्बलताओं अथवा त्रुटियों को समझ कर, उनको दूर करने के लिए योग मार्ग का आश्रय ग्रहण करते हैं, वे धीरे–धीरे अपनी निर्बलता को सबलता में बदल देते हैं, और न केवल सांसारिक विषयों में ही अपने मनोरथों को सफल करते, वरन् आध्यात्मिक क्षेत्र में भी ऊँचे उठते हैं। वे स्वयं अपना कल्याण साधन करने के साथ–साथ अन्य सैकड़ों व्यक्तियों के लिए भी उद्धार का मार्ग प्राप्त करने के योग्य बना देते हैं

योग–शास्त्र में साधन के जो सर्वमान्य नियम दिये गये हैं, उनके सिवाय अध्यात्म–विद्या के ज्ञाताओं ने, इस मार्ग में शीघ्र प्रगति करके कुछ बहुत

महत्वपूर्ण शक्तियां प्राप्त कर लेने की जो विधियां अथवा योग–शाखायें निकाली हैं, उनमें 'कुण्डलिनी–योग' का विशेष स्थान है। इससे शरीर में एक ऐसी शक्ति का आविर्भाव होता है, जिससे मनुष्य की चैतन्यता बहुत अधिक बढ़ जाती है और वह जब चाहे तब स्थूल–संसार के बजाय सूक्ष्म–जगत् की स्थिति का अनुभव कर सकता है और एक संकीर्ण क्षेत्र में रहने के बजाय विशाल–विश्व की गतिविध को देखने लगता है। 'हठ योग प्रदीपिका' में 'कुण्डलिनी शक्ति' के महत्व का वर्णन करते हुए कहा है –

सशैलवनधात्रीणां यथाधारोडहिनायकः ।
सर्वेषां योगतंत्राणां तथाधारों हि कुंडली।।
सुप्ता गुरूप्रसादेन यदा जागति कुंडली ।
तदा सर्वाणि पद्मानि भिद्यंते ग्रंथयोडपि च ।।
प्राणस्य शून्यपदवी तथा राजपथायते।
तदापि चित्तं निरालबं तदा कालस्य वंचनस् ।।

– (हठयोग पु. 3–1, 2, 3)

"जिस प्रकार सम्पूर्ण वनों सहित जितनी भूमि है,उसका आधार सर्पो का नायक (शेषनाग) है, उसी प्रकार समस्त योग साधनाओं का आधार भी कुण्डली ही है, जब गुरू की कृपा से सोयी हुई कुण्डली जागती है, तब सम्पूर्ण पद्म (षट्चक्र) और ग्रन्थियां खुल जाती हैं, और उसी समय प्राण की शून्य पदवी (सुषन्ना),राजपथ (सड़क) के समान हो जाती है, चित्त विषयों से रहित हो जाता है और मृत्यु का भय मिट जाता है।"

अन्यशास्त्रों तथा विशेषकर तन्त्र ग्रन्थ में कुण्डलिनी के स्वरूप तथा उसके उत्थान का विवेचन करते हुए कहा कि "कुण्डलिनी शक्ति मूलाधार में शक्ति रूप में स्थित होकर मनुष्य को सब प्रकार की शक्तियां, विद्या और अन्त में मुक्ति प्राप्त कराने का साधन होती है।" इस कुण्डलिनी को 'परमा–प्रकृति' कहा गया है। देव, दानव, मानव, पशु–पक्षी, कीट–पतंग–सभी प्राणियों के शरीर में यह कुण्डलिनी शक्ति विराजमान रहती है।

कमल–पुष्प में जिस प्रकार भ्रमर अवस्थित होता है, उसी प्रकार यह भी देह में रहती है। इसी कुण्डलिनी में चित्त्–शक्ति (चैतन्यता) निहित रहती है। इतनी महत्वपूर्ण होने पर भी लोग उसकी तरफ ध्यान नहीं देते, यह आश्चर्य का विषय है। यह अत्यन्त सूक्ष्म शक्ति है। इसकी सूक्ष्मता की कल्पना करके योग–शास्त्र में कहा है –

योगिनां हृदयाम्बुजे मृत्यन्ती मृत्यमत्रजसा।
आधारे सर्वभूतानां स्फुरन्ती विद्युताकृति।।

अर्थात् – "योगियों के हृदय देश में वह नृत्य करती रहती है। यही सर्वदा प्रस्फुति होने वाली विद्युत रूपमहाशक्ति सब प्राणियो का आधार है।" इसका आशय यही है कि कुण्डलिनी शक्ति के न्यूनाधिक परिणाम में चैतनय हुये बिना मनुष्य की प्रतिभा का विकास नहीं होता।

कुण्डलिनी आत्म शक्ति की प्रकट और प्रखर स्फुरणा है। यह जीव की ईश्वर प्रदत्त मौलिक शक्ति है। प्रसुप्त स्थिति में वह मृत तुल्य पड़ी रहती है। वैसी स्थिति में उससे कोई लाभ उठाना सम्भव नहीं हो पाता। यदि उसकी स्थिति को समझा जा सके तो प्रतीत होगा कि अपने ही भीतर वह भण्डार भरा पड़ा है जिसकी तलाश में जहां–तहां भटकना पड़ता हैं वह ब्रम्हाणी शक्ति अपने ही अन्तराल में छिपी पड़ी है, जिसे कामधेनु कहा गया है। आत्मसत्ता में सन्निहित इस महाशक्ति का परिचय कराते हुए साधना शास्त्रों ने यह बनाने का प्रयत्न किया है कि अपने ही भीतर विद्यमान इस महती क्षमता का ज्ञान प्राप्त किया जाये और उससे सम्पर्क साधने का प्रयत्न किया जाय। कुण्डलिनी परिचयन् के कुछ उद्धरण इस प्रकार हैं –

मल–मूत्र छिद्रों के मध्य मूलाधार चक्र में कुण्डलिनी का निवास माना गया है। उसे प्रचण्ड शक्ति स्वरूप समझा जाय। यह विद्युतीय प्रकृति की है। ध्यान में वह कौधती बिजली के समान प्रकाशवान दृष्टिगोचर होती है। कुण्डलाकार है उसका स्वरूप प्रसुप्त सर्पिणी के समान है।

यह उसका स्थानीय परिचय हुआ। अब उसका आधार, कारण, स्वरूप एवं प्रभाव समझने की आवश्यकता पड़ेगी। बताया गया है कि यह ब्रम्ही शक्ति है। स्वर्ग से गंगा अवतरित होकर पृथ्वी पर आई थी और इस लोक को धन्य बनाया था। इसी प्रकार यह बम्ही शक्ति सतपात्र साधकों की आत्म सत्ता पर अवतरित होती है और उसे हर दृष्टि से सुमम्पन्न बनाती है। कहा गया है कि –

ज्ञयाशक्तिरियं विष्णोर्निर्भया स्वर्णभास्वरा।
सत्वं रजस्तमश्चेति गुणत्रय प्रसूतिका।।
मूलाधारस्थ वन्हयात्मते जो मध्ये व्यवस्थत।
जीवशक्तिः कुण्डलाख्या प्राणाकारण तेजस ।।
महाकुण्डलिनीप्रोक्ता पर ब्रम्हास्वरूपिणी।

शब्दबम्हामयी देवी एकानेकाक्षराकृतिः।।
शक्ति कुण्डलिनी नाम विसतन्नु निभ सुभा।

– महायोग विज्ञान

यह स्वर्ण समान आभा वाली महाशक्ति कुण्डलिनी निर्भयता प्रदान करने वाली है। वही वैष्णवी है। सत, रज, तम तत्वों को उत्पन्न करने वाली है। मूलाधार के मध्य में आत्म तेज रूपी अग्नि पुंज होकर विराजमान है जीवनी शक्ति वहीं है। तेजस्वी प्राण ही उसका आकार है। परब्रम्हा मय है। इसकी अनेक आकृतियां हैं। इन शुभ कामनाओं को पूर्ण करने वाली शक्ति का नाम कुण्डलिनी है।

योग साधनाओं के अन्तर्गत कुण्डलिनी जागरण की फल श्रुतियों के सम्बन्ध में समस्त संसार में लगभग एक जैसी ही मान्यताएं प्रचलित हैं। इस साधना की सफलता से साधक में अनेकों दिव्य क्षमताएं विकसित होने का विश्वास किया जाता हैं। समझा जाता है कि ऐसा व्यक्ति सामान्य स्थिति से ऊँचा उठकर विशिष्ट सिद्ध पुरूषों की स्थिति में जा पहुँचता है। योगशास्त्रों में कुण्डलिनी जागरण के महत्वों की जितनी चर्चा हुई है उतनी और किसी साधना के सम्बन्ध में सर्वाभौम स्तर पर नहीं मिलती। उसके विधानों और विवरणों में तो थोड़ा बहुत अन्तर है, पर यह मान्यता सर्वविदित है कि आन्तरिक आत्मिक शक्तियों को प्रसुप्ति से जाति में बदलने–जाग्रति प्रचण्ड बनाने में कुण्डलिनी जागरण प्रक्रिया से असाधरण सहायता मिलती है।

कुण्डलिनी साधक की जागृति होती है; पर यह नहीं कहा जाता कि यह साधक की अपनी उपर्जित पूँजी है। वह एक प्रचण्ड विश्वव्यापी शक्ति है जिसे उपयुक्त सत्पात्र अपनी साधना प्रक्रिया द्वारा आकर्षित करके अपनी आत्मिक सम्पदा सशक्ता बढ़ाते हैं। इस उपार्जित सम्पदा के आधार पर सांसारिक वैभव और आत्मिक वर्चस्व का दुहरा लाभ मिलता है।

कठोपनिषद् के यम नचिकेता सम्वाद में जिस पंचाग्नि विद्या की चर्चा हुई है। उसे कुण्डलिनी शक्ति की पंच विधि विवेचना कहा जा सकता हैं। श्वेताश्वर उपनिषद् में उसे 'योगाग्नि' कहा गया है –

नतस्य रोगो न जरा न मृत्युः
प्राप्तस्य योगाग्नि मयं शरीरम्।

चैनिक योग प्रदीपिका में उसे 'स्पिरिट फायर' नाम दिया गया है। जानवुडरफ सरीखे तन्त्रान्वेषी उसे सर्पवत् बलयान्विता सर्पेन्ट नाम देते रहे

हैं।

ऋषि शिष्या मैडम ब्लैशेटस्की नेउसे विश्व–व्यापी विद्युत शक्ति–'कास्मिकी इलैक्ट्रिसिटी' नाम दिया है। वे उसकी विवेचना विश्व विद्युत के समतुल्य चेतनात्मक प्रचण्ड–ग्रन्थ में अपना अभिप्रायः इस प्रकार व्यक्त किया है – सर्पवत् या बलयान्विता गति अपनाने के कारण इस दिव्य शक्ति को कुण्डलिनी कहते हैं। इस सामान्य गति को योग साधक अपने शरीर में चक्राकार बना लेता है इस अभ्यास से उसकी वैयक्तिक शक्ति बढ़ती है। कुण्डलिनी विद्युतीय अग्नियुक्त गुप्त शक्ति है यह वह प्राकृत शक्ति है जो सेन्द्रिय निन्द्रय प्राणियों एवं पदार्थों के मूल में विद्यमान है।

ब्रम्हाण्ड में दो प्रकार की शक्तियां काम करती हैं – एक लौकिक (सेकुलर) दूसरी आध्यात्मिक (स्प्रिचुअल) इन्हें फिजीकल और मैटाफिजीकल भी कहते हैं। लोग प्रत्यक्ष शक्तियों का प्रमाण प्रत्यक्ष उपकरणों से प्राप्त कर लेते हैं, अस्तु उन्हीं की सत्ता स्वीकार करते हैं।

शरीर विज्ञानियों ने उसे नाड़ी संस्थान से अद्भूत–सर्वस् फोर्स कहा है। डा. रेले ने अपने बहुचर्चित ग्रन्थ –मिस्ट्रीरियस कुण्डलिनी' में उसकी वेगम नर्व' के रूप में व्याख्या की है। माँस–पेशियों और नाड़ी संस्थान के संचालन में काम आने वाली सामर्थ्य को ही अध्यात्म प्रयोजनों में काम करने पर कुण्डलिनी संरक्षक बनने का वे प्रतिपादन करते हैं। उनके मतानुसार यह शक्ति जब नियन्त्रण में आ जाती है तो उसके सहारे शरीर की ऐच्छिक और अनैच्छिक गतिविधियों पर इच्छानुसार नियन्त्रण प्राप्त किया जा सकता हैं यह आत्म–नियन्त्रण बहुत बड़ी बात है। इसे प्रकारान्तर से व्यक्तित्व के अभीष्ट निर्माण की तद्नुसार भाग्य निर्माण की सामर्थ्य कह सकते हैं। वे भी रूप में कुण्डलिनी का गुण–गान करते और उसकी उपयोगिता बताते हुए उसके जागरण का परामर्श देते हैं।

डाक्टर रेले की उपरोक्त पुस्तक 'रहस्यमयी कुण्डलिनी' की भूमि का तन्त्र मर्मज्ञ सर जानवुडरफ ने लिखी है। जिसमें उन्होंने रेले के इस अभिगत से असहमति प्रकट की है कि वह शरीर संस्थान की विद्युतधारा मात्रा है। उन्होंने लिखा है – "वह एक चेतन और महान सामर्थ्यवान् शक्ति– 'ग्रान्ड पोटेन्शियल' है जिसकी तुलना अन्य किसी पदार्थ या प्रवाह से नहीं की जा सकती। मेरी राय में नाड़ी शक्ति कुण्डलिनी एक एक स्थूल रूप ही है, वह मूलतः नाड़ी संस्थान या उसका उत्पादन नहीं है। व न कोई भौतिक पदार्थ

है और न मानसिक शक्ति। वह स्वयं ही दोनों प्रवाहों को उत्पन्न करती है। स्थिर सत्य (स्टेटिक–रियल) गतिशील सत्य (फैनामिक रियल) एवं अवशेष शक्ति (रैजीडअल पावर) के समन्वित प्रवाह की तरह इस सृष्टि में काम करती है। व्यक्ति की चेतना में वह प्रसुप्त पड़ी रहती है। इसे प्रयत्नपूर्वक जगाने वाला विशिष्ट सामर्थ्यवान बन सकता है।''

विज्ञान की भाषा में कुण्डलिनी को जीवन शक्ति अथवा चुम्बकीय विद्युत कहते हैं। इसका केन्द्र मस्तिष्क माना गया है तो भी यह रहस्य अभी स्पष्ट नहीं हुआ कि मस्तिष्क को अपनी गतिविधयों के संचालन की क्षमता कहां से मिलती है। योगशास्त्र इसका उत्तर उस काम शक्ति की ओर संकेत करते हुए देता है और बताता है कि अव्यक्त मानवी सत्ता को व्यक्त होने का अवसर इसी केन्द्र से मिलता है। वही कामतन्त्र के विभिन्न क्रियाकलापों के लिए आवश्यक प्रेरणा भी देती हैं यहां वह चुम्बकीय 'क्रिस्टल' है जो काया के 'ट्रान्जिस्टर' को चलाने वाले आधार खड़े करता है।

कुण्डलिनी क्या है?इसके सम्बन्ध में शास्त्रों और तत्वदर्शियों ने अपने–अपने अनुभव के आधार पर कई अभिमत व्यक्त किये हैं। ज्ञानर्णव तन्त्र में कुण्डलिनी को विश्व जननी और सृष्टि संचालिनी शक्ति कहा गया है – ''शक्तिः कुण्डलिनी विश्व जननी व्यापार, वद्धोद्यता।'' विश्व व्यापार एक घुमावदार उपक्रम के साथ चलता है। परमाणु से लेकर ग्रह नक्षत्रों और आकाश गंगाओं तक की गति परिभ्रमण परक है। हमारे विचार और शब्द जिस स्थान से उद्भूत होते हैं–व्यापक परिभ्रमण करके वे अपने उद्गम केन्द्र पर ही लौट आते हैं। यही गतिचक्र भगवान् के चार आयुधों में से एक है। महाकाल की परिवर्तन प्रक्रिया इसी को कहा जा सकता है जीव को चक्रारूढ़ मृतिका पिण्ड की तरह यही घुमाती है और कुम्हार जैसे अपनी मिट्टी से तरह–तरह के पात्र उपकरण बनाता है, उसी प्रकार आत्मा की स्थिति को उठाने–गिराने की भूमिका भी वही निभाती है। कुण्डलिनी सृष्टि सन्दर्भ में समिष्ट और जीव सन्दर्भ में व्यष्टि शक्ति संचार करती है।

आध्यात्म ग्रन्थों में विशेषतः उपनिषदों में कुण्डलिनी शक्ति की चर्चा हुई है। पर इस को ही पूर्ण पक्ष नहीं मान लेना चाहिए। इस से आगे एवं अधिक भी बहुत कुछ कहने, जानने और खोजने योग्य शेष रह जाता है। इन अपूर्ण शटकों को मिलाकर हमें वस्तुस्थिति समझने अधिक जाने के लिए अपना मस्तिष्क खुला रखना चाहिए।

कुण्डलिनी आत्म शक्ति की प्रकट और प्रखर स्फरणा है। यह जीव की ईश्वर प्रदत्त मौलिक शक्ति है। प्रसुप्त स्थिति में वह अविज्ञात बनी और मृत तुल्य पड़ी रहती है। वैसी स्थिति में उससे कोई लाभ उठाना सम्भव नहीं हो पाता। यदि उसकी स्थिति को समझा जा सके तो प्रतीत होगा कि अपने ही भीतर वह भण्डार भरा पड़ा है जिसकी तलाश में जहां–जहां भटकना पड़ता है। यह ब्रम्ही शक्ति अपने ही अन्तराल में छिपी पड़ी है, जिसे कामधेनु कहा गया है। आत्मसत्ता में सन्निहित इस महाशक्ति का परिचय कराते हुए साधना शास्त्रों ने यह बताने का प्रयत्न किया है कि अपने ही भीतर विद्यमान इस महती क्षमता का ज्ञान प्राप्त किया जाय और उससे सम्पर्क साधने का प्रयत्न किया जाय।

कुण्डलिनी जागरण से इस प्रकार की अनेकों शक्तियों, सिद्धियों और क्षमताओं का जागरण होता है, यह सच है, क्योंकि इस साधना द्वारा साधक की अन्तर्निहित बीज रूप शक्ति जाग्रत होकर उर्ध्वगामी बनती हैं यह साधनाएं आत्मसत्ता को परमात्म सत्ता से जोड़ने, उस स्तर पर पहुंचने में समर्थ है। इनके लिए सामान्य साधना कम से उपर उठकर कुछ विशिष्ट साधना प्रक्रियायें अपनानी पड़ती हैं। प्रत्येक व्यक्ति की स्थिति के अनुरूप उनका अलग–अलग विधान है, इसलिए उनका सार्वजनिक प्रकाशन करना न आवश्यक है और न उचित।

कुण्डलिनी जागरण की साधना पद्धति का प्रयोजन अपने भीतर के देव अंशों को विकसित और परिपुष्ट बनाना है। कैलाश पर्वत पर सर्पों का यज्ञोपवीत धारण करके विराजमान शिव और क्षीर सागर में शेषनाग पर सोये हुए विष्णु का बीजांश हमारे मस्तिष्क मध्य केन्द्र–ब्रम्हारंध्र में यथावत् विद्यमान हैं इस स्थान को 'सहस्त्रार' कहते हैं। महाकाली–अग्निजिहबा चामुण्डा का बीजांश जननेन्द्रिय गहर–मूलाधार– में विद्यमान है। इन दो शक्तियों के असम्बद्ध बने रहने पर केवल उनकी उपस्थिति का आभास मात्र ही होता है, पर जब उन दोनों का संगम समागम हो जाता है तो अजस्त्र शक्ति की एक ऐसी धारा प्रवाहित हो उठती है जिसे अनुपम या अद्‌भुत ही कहा जा सकता है।

मस्तिष्क के मध्य भाग में अवस्थित सहस्त्रार कमल में शेषशायी विष्णुभगवान अवस्थित है और अधः अवस्थित मूलाधार चक्र के अधिपति शिव हैं। शिव चरित्र में कामदेव द्वारा शिव को उद्‌दीप्त करने और उनके द्वारा

तीसरा नेत्र खोलकर कामदेव को जला डालने वाली कथा प्रख्यात हैं कुण्डलिनी जननेन्द्रिय केन्द्र के समीप होने से अपने निकटवर्ती क्षेत्र को प्रभावित करती है, तत्वदर्शी उस अपव्यय को ज्ञान नेत्र खोलकर नियन्त्रित कर लेते हैं। एक पौराणिक कथा इसी सन्दर्भ में यह भी है कि शिव के काम पीड़ित होने पर उनकी जननेन्द्रिय के 18 टुकड़े विष्णु ने कर डाले और वे जहां भी गिरे वहां ज्योतिलिगों की स्थापना हुई। द्वादश ज्योतिलिगों का उद्‌भव इसी प्रकार हुआ। वासना को ज्योति में बदला जा सकता है। इस कथानक का यही मर्म है।

अपने ग्रंथ– ''वायस ऑफ दि साइलेन्स'' में उनने कहा है कि उर्पवत् या बलयान्विता गति अपनाने के कारण उस महाशक्ति को कुंडलिनी कहते हैं। इस सामान्य गति को योग साधक अपने शरीर में चक्राकार बना लेता है। इस अभ्यास से उसकी वैयक्तिक शक्ति बढ़ती कुंडलिनीविद्युतीय अग्नियुक्त गुप्शक्ति है। यह वह प्राकृतिक शक्ति है जो सेन्द्रिय एवं निरीन्द्रिय प्राणियों और पदार्थों के मूल में विद्यमान है।

हठयोग के व्याख्याकारों ने वस्तिक्षेत्र के कहर में अंडे की आकृति वाले 'कंद' के साथ उसका सम्बन्ध जोड़ा है। शिव संहिता में कहा गया है गुदाद्वयं गुलतश्चोर्ध्व मेढ्रैकांगुलतरत्वधः एवं चास्ति समं कदं समता नतरंग़लम। अर्थात् गुदा से दो अंगुल नीचे चार अंगुलविस्तार 'कंद' का प्रमाण है। इसी में आगे उल्लेख है – 'गुदा एवं शिश्न के मध्य में जो योनि है – वह पश्चिाभि मुखी अर्थात् पीछे को मुख है, उसी स्थान में 'कंद' है और इसी स्थान में सर्वदा कुंडलिनी स्थिति है।

कुण्डलिनी परिचय में स्थान–स्थान पर स्वयंभू लिंग की चर्चा है। बहुत स्थानों पर उसे 'कंद' भी कहा गया हैं यह क्या है?इसे जानने के लिए स्थूल शरीर से सम्बंधित शरीर शास्त्र का पर्यवेक्षण किया जा सकता हैं शरीर में यह घटक सुषुम्ना का – मेरूदंड का नीचे वाला अंतिम छोर है। जिसे ''कॉडां इक्वाइना'' कहते हैं मेरूदंड मस्तिष्क से प्रारंभ होकर चेचु (काक्सीक्स) की अंतिम कशेरूका तक जाती है और इसके बाद रेशमी धागों की भांति शुंडाकृति हो जाती है। उसके अंत में अगणित पतले–पतले धागों से पैदा हो जाते हैं, जिससे नाड़ी तंतुओं का एक सघन गुच्छा तैयार हो जाता है। इसी गुच्छक को ''कॉर्डा इक्वाइना'' कहा हैं। सूक्ष्मशरीर के कंद का इसे प्रतिनिधि कहा जा सकता है। शरीर शास्त्र की दृष्टि से यही स्वयंभू लिंग है। मूलाधार

चक्र में 'आधारन' शब्द इसी स्थान के लिए व्यवहत हुआ है। रीढ़ की अंतिम चार अस्थियों के सम्मिलित समुच्य को भी कई मनीषियों ने 'कंद' बताया है। मल–मूलछिद्रों के मध्य स्थान पर मूलाधार चक्र बताया गया है। इसे चमड़ी की ऊपर सतह नहीं मान लेना चाहिए, वरन् उस स्थान की सीध में ठीक ऊपर प्रायः तीन अंगुल ऊँचाई पर अवस्थित समझाना चाहिए। इस तरह मूलाधार मल मूत्र छिद्रों के मध्य वाली सीध पर अंतः गहर में स्थित माना चाहिए।

साधना शास्त्रों में पवित्र जीवन अग्नि के रूप में कुण्डलिनी शक्ति का वर्णन किया गया है। प्रदीप्त अग्नि जिस प्रकार अपने क्षेत्र को ऊष्ण एवं प्रकाशवान बना देती है वैसा ही प्राश कुण्डलिनी जागरण का भी होता है।

ब्रम्हाज्योतिर्वसुधा मा ब्रम्हास्थानीय उच्यते।
ततो यः पावको नाम्ना यः सन्द्रियोग उच्यते।

– मत्स्य पुराण

ब्रम्हाज्योति अग्नि ब्रम्हा–रन्ध्र स्थान में निवास करती है। यह साधकों को पवित्र करने वाली है। यही योगाग्नि हैं।

चन्द्राग्निरविसंयुक्तो आद्या कुण्डलिनी माता।
हत्प्रदेशे तु सा ज्ञया अंकुराकारसंस्थिता ।।27।।

– अग्नि पुराण

चन्द्र और सूर्य की शक्ति से भरी हुई कुण्डलिनी शक्ति हृदय प्रदेश में रहती है। उनकी ज्योति अंकुर के आकार की है।

मूलाधारादा ब्रम्हारन्ध्र पर्यन्तं सुषुम्ना सूर्याभा।
तन्मध्येतटित्कोटिसमा मृणालतन्तु सूक्ष्माकुण्डलिनी।
तत्र तमोनिवृतिः। तद्धर्शनात्सर्वपापविनृतिः।।

– मण्डल ब्रम्हाणोपनिषद् 1/2

शरीर शास्त्र के अनुसार सुषुम्ना और इड़ा,पिंगला, की संगति कुछ प्रत्यक्ष नाड़ियों के साथ विठाने का प्रयत्न किया गया है। मेरूदण्ड की पोल में सुषुम्ना संचार है। सुषुम्ना के दोनों ओर स्नायु कोषों की जंजीर ऊपर से नीचे तक फैली हुई है। दाहिनी ओर की जंजीर–राइट सिम्पैथिक कार्ड को पिंगला और बांये ओर की जंजीर लैफ्ट सिम्पैथिक कार्ड को इड़ा कहा गया है।

डा. राखाल दास राय की अपनी पुस्तक "रीजनलएक्स पोजिशन आव भारतीय योग दर्शन" में सुषुम्ना को उन्होंने 'स्पाइनल कार्ड' बताया है। पिंगला

को 'राइट नर्बस् टर्मिनेल और इड़ा को लेफ्ट नर्वस् टर्मिनेल नाम दिया है।

डा. ब्रजेन्द्र नाथ सील ने अपनी पुस्तक 'दि पॉजिटिव साइंसेज् आव एनसियेन्ट हिन्दूज' में प्राचीन और अर्वाचीन शरीर शास्त्र की विसंगतियों पर प्रकाश डालते हुए बताया है कि दोनों प्रतिपादन शैलियों में ही अन्तर है। तथ्य, लगभग मिलते–जुलते ही हैं। उसमें उन्होंने बताया है कि योग शास्त्र के चक्र यद्यपि अदृश्य क्षमताओं के प्रतीक हैं तो भी उनका आधार स्थल प्रत्यक्ष नाड़ी गुच्छकों को मानने में आपत्ति नहीं होनी चाहिए। थियोसोकिस्ट पत्रिका में मेजन वी.डी. वसु का एक लेख प्रकाशित हुआ था। ''एनाटोमी आव तंत्राज'' उसमें उन्होंने योग संस्थानों को शरीर में पाये जाने वाले प्रत्यक्ष अवयव ही सिद्ध किया है और कहा है उन्हें अदृश्य या सूक्ष्म मानने की आवश्यकता नहीं है। ये अवयव सामान्यतया शरीर यात्रा पूरी करते हैं पर असामान्य रूप से विकसित कर लिये जाने पर वे असाधारण कार्य भी कर सकते हैं जैसे कि मस्तिष्क और नेत्रों की परिष्कृत शक्ति से कई प्रकार के आश्चर्यजनक कार्य सम्पन्न किये जाते रहते हैं। महा महोपाध्याय गणनाथ सेन ने अपने ग्रन्थ प्रत्यक्ष शरीरम् तथा शरीर परिवेश में योग शास्त्र में वर्णित संस्थानों को इसी शरीर में विद्यमान बताया है।

सर जॉन बुडरफ ने तन्त्र ग्रन्थ 'पादुका पंचक' और 'षट चक्र निरूपण' की व्याख्या विवेचना पर एक विशद ग्रन्थ सर्पेन्ट पावर' लिखा है। इसमें चक्रों की उपस्थिति प्रस्तुत शरीर में प्रत्यक्ष ही बताई गई हैं। बुडरफ के इस ग्रन्थ के आधार पर एम.पी. पंडित ने एक छोटी पुस्तक कुण्डलिनी योग 'अंग्रेजी में लिखा थी इसमें वे चक्रों की उपस्थिति प्रत्यक्ष मानते हैं। थियोसोफी के आदि संचालकों में सी डब्ल्यू'' लेडवीटर का भी नाम है। उनके ग्रन्थ ' चक्राज' में चक्रों के अस्तित्व को मानवी काया में ही दृश्यमान बताया है। सूक्ष्म तो वे उनकी प्रसुप्त शक्तियों भर को कहते हैं।

कुण्डलिनी शक्ति को प्रायः 'फायर आफ लाइफ' के रूप में ही प्रतिपादित किया गया हैं उसकी अभिवृद्धि जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में विभिन्न प्रकार से परिलक्षित होती है। शरीर क्षेत्र में उसके समर्थ आरोग्य के रूप में मन में सन्तुलित विवेकाशीलता के रूप में उसे देखा जा सकता हैं। काय कलेवर में वह बलिष्ठता–निरोगिता–स्फूर्ति, क्रियाशीलता, उत्साह, तत्परता के साथ दृष्टिगोचर होती हैं। मस्तिष्क में उसका परिचय तीव्र बुद्धि, दूरदर्शिता, स्मरण शक्ति, सूझबूझ, कल्पना, निर्णय क्षमता, कुशलता, व्यवस्था आदि के

रूप में देखा जा सकता है। भावना क्षेत्र में बड़ी श्रद्धा निष्ठा आस्था भाव संवेदना करता आत्मीयता, सौनदर्यानुभूति के रूप में उभरती है। सब मिला कर उसे उच्चस्तरीय उत्कृष्टता की दिशा में जीव चेतना को धकेलते हुए देखा जा सकता है।

इस संदर्भ में अब अनेक विदेशी विद्वान भी इस तरफ ध्यान देने लगे हैं और उन्होंने स्वयम् कुण्डलिनीसाधन करके उसकी शक्ति का अनुभव किया है। उनकी सम्मति में कुण्डलिनी शक्ति विश्व–व्यापी है। एक दृष्टि से हम अपने शरीरों में स्थित कुण्डलिनी को चैतन्य–शक्ति का आधार कह सकते हैं। इस शक्ति की एक धारा समस्त विश्व में सूर्य, चन्द्र आदि प्राकृतिक पिण्डों में भी बहती–रहती है। इस प्रकार उसे सर्व–शक्तिमान कह सकते हैं। अगर साधक कुण्डलिनी–योग में पूर्ण सफलता प्राप्त करके उस पर पूरा अधिकार और नियंत्रण कर सके तो फिर संसार में उसके लिये कोई कार्य असम्भव नहीं है। वह सृष्टि का संचालन अपनी इच्छानुसार कर सकता है।

पर यह कार्य सामान्य नहीं है। इस कार्य में वे व्यक्ति ही हाथ डाल सकते हैं, जिन्होंने अपना रहन–सहन आरम्भ से ही पूर्ण संयम–युक्त और सात्विक रखा है और अपने शरीर तथा मन को नियमित अभ्यास द्वारा सुदृढ़ और सहनशील बनाया है। क्योंकि यह महाशक्ति जो कि सूर्य की शक्ति मानी जाती है, जब जाग्रत की जाती है, तब समस्त शरीर, विशेषकर स्नायु–संस्थान में बहुत उष्णता उत्पन्न करती है, जिससे साधक को कष्ट प्रतीत होने लगता हैं कभी–कभी ऐसा भी होता है कि उत्तम श्रेणी के साधकों में ध्यान और उपासना करते–करते यह स्वयम् ही जाग्रत हो जाती है।

श्री रामकृष्ण परमहंत के जीवन–चरित्र से विदित होता है कि जिस समय दक्षिणेश्वर के मन्दिर में महीनों तक काली का ध्यान करते हुए उनकी कुण्डलिनी शक्ति जाग्रत हो गई थी तब उनको भी ऐसा ही कष्ट सहन करना पड़ा था। उसे अवस्था का वर्णन करते हुए उन्होने बतलाया था –

"कुछ झुनझुनी–सी उठकर पाँव से सर तक जाती है। सिर में पहुँचने के पूर्व तक तो चेतना रहती है, पर सिर में उसके पहुँचने पर सुध–बुध जाती रहती है, आँख, कान अपना कार्य नहीं करते, बोली भी रूक जाती है। बोले कौन?उस समय 'मैं' और 'तू' का भेद ही मिट जाता है। जो शक्ति झन–झन करती ऊपर उठती है, वह एक ही प्रकार की गति से नहीं चढ़ती। शास्त्रों में उसके पाँच प्रकार कहें हैं –

(1) चींटी के समान धीरे–धीरे ऊपर चढ़ना, (2) मेंढ़क के समान दो–तीन छलांग जल्दी–जल्दी कूद कर फिर ठहर जाना (3) सर्प के समान टेढ़ी गति से चलना

(4) पक्षी के समान उड़कर चढ़ना (5) बन्दर के समान दो तीन छलांग लगाकर सिर में पहुंच जाना। किसी भी गति से इसके सिर में पहुंचने पर समाधि हो जाती है।

जीवन को उन्नत, शक्तिशाली और महान् बनाने के लिए कुण्डलिनी–जागरण निःसन्देह एक अत्यन्त प्रभावशाली मार्ग है। पर यह तभी सम्भव है, जब इस साधना को किसी अनुभवी शिक्षक की देख–रेख में किया जाये। इससे भी अधिक आवश्यक यह है कि साधक के आचार–विचार और उद्देश्य पूर्णतः शुद्ध हों।कुण्डलिनी का स्थान :

कुण्डलिनी यद्पि शक्ति रूप भी हो तो भी उसके स्थान का वर्णन हठ्यौगिक ग्रंथों में मिलता है। जैसे शिव संहिता में कहा गया है कि, ''गुदा से दो अंगुल ऊपर और मेद्र अर्थात् लिंग मूल से एक अंगुल नीचे चार अंगुल विस्तार कंन्द का प्रमाण है उस गुदा में मेद्र के मध्य में जो योनि है वह पश्चिम मुख है उसी स्थान में कंद है और उसी स्थान में सर्वदा कुण्डलिनी की स्थिति है।'' दर्शनोपनिषद में कंद को त्रिकोण शब्द से कहा है। अन्य ग्रंथों में भी कंद का विस्तार से वर्णन मिलता है इन सभी वर्णनों से ऐसा कह सकते हैं कि हमारे शरीर में मेरूदण्ड के नीचे कटि प्रदेश में जो एक त्रिकोणाकृति हड्डी है, जिसको अंग्रेजी में सेक्रम कहते हैं, वही हठयोग के ग्रंथों में वर्णित कंद है।

1. सशैलवनधात्रीणां यथाधारोऽहि नायकः।
सर्वेषां योग तंत्राणां तथाधारो हि कुंडली।। 'हठयोग्र प्रदीपिका'। 3/2
2. शिव संहिता – 5/74 से 75

वह ऊपर से चौड़ा और नीचे से संकरा होता है। उसका नीचे का छोर मूलाधार चक्र में होता है। इस त्रिकोण का विस्तृत तथा निश्चित वर्णन षट्चक्र निरूपण में इस प्रकार किया गया है कि, ''वज्रा नाड़ी के आरंभ में मूलाधार चक्र में त्रिकोण होता है। उसमें कंदर्प नाम का वायु होता है इस त्रिकोण में तप्त सुवर्ण के समान कांतिमान, श्याम वर्ण, पीछे की ओर मुख किया हुआ स्वयंभू शिवलिंग होता है। ''सेक्रम'' के नीचे जो रीढ़ की अंतिम तीन हड्डिया एक दूसरे से जुड़ी हुई होती है, जिसको अंग्रेजी में ''काक्सीक्स'' कहते हैं

शायद स्वयंभू लिंग का तात्पर्य उसी "काक्सीक्स" से है – ऐसा कह सकते हैं।

कुण्डलिनी के नाम अनेक

भिन्न–भिन्न देशों में कुण्डलिनी सम्बन्धी विवरण उनके अपने–अपने आचार व्यवहार के आधार पर मिलते हैं। जापान में 'की' नाम से कुण्डलिनी शक्ति की बात की जाती है तो चीन में 'ची' नाम से। ईसाई लोग होली – स्पिरिट' कहते है तो हिन्दु चित्त शक्ति। देवी पूजक 'चिर कुमारी' शक्ति कहते हैं तो तान्त्रिक ऊर्ध्वरेतः शक्ति। योगी इसी को सर्प की कुण्डली की संज्ञा देते हैं।

हठयोग प्रदीपिकां में कुण्डलिनी के अनेक नाम प्राप्त होते हैं। जैसे – कुटिलांगी, कुण्डलिनी, भुजंगी, शक्ति, ईश्वरी, अरूंधती, कुण्डली। इसके अलावा भी आधार शक्ति, पराशक्ति, वाचाशक्ति आदि नाम कुण्डलिनी के सम्बोधन स्वरूप प्राप्त होते हैं। तो भी ये सभी का अर्थ एक ही है।

अध्याय – 3
षट्चक्रों का स्वरूप और रहस्य :

शरीर और मन के संबंध में योग की जो विभिन्न संकल्पनायें हैं, उनमें से नाड़ी और वायु की संकल्पनायें कुछ समझ में आती है यद्यपि उनका आधुनिक वैज्ञानिक तथ्यों से कुछ तालमेल नहीं दिखता। परन्तु चक्र तथा कुण्डलिनी ये दो संकल्पनायें अभी तक रहस्य ही रही है। इनका कुछ भी स्पष्टीकरण संभव नहीं दिखता, जो कि आधुनिक वैज्ञानिक जानकारी के साथ मेल खाता हो। इनके स्पष्टीकरण के अनेक प्रयास हुए हैं, परन्तु ग्रंथों में जो इनका वर्णन मिलता है, उसके अलावा इनकी कोई जानकारी उपलब्ध नहीं हुई हैं।

जैसे हमारे शरीर के हाथ, पैर, आंखे, हृदय, धमनियां, नाड़ियां आदि अंग है, उनको हम देख सकते हैं वैसे चक्र नहीं है शायद चक्र प्रतीकात्मक हैं। इनको "पद्म" या "कमल" इन शब्दों से भी कहा गया है। यद्यपि "षट्चक्र" इस शब्द के अनुसार उनकी संख्या छः होनी चाहिए, फिर भी संख्या में वे कुल सात हैं। प्रत्येक का अपना स्थान है अपनी एक निश्चित पंखुड़ियों की दल या कोण की संख्या है। अपना एक अधिष्ठात्री देवता है। अपना एक रंग है, एक बीज है और दलों पर अंकित वर्णमाला के अक्षर हैं जैसे – वं, शं, लं आदि। ऐसी कोई बात प्रत्यक्ष में मनुष्य के शरीर में तो नहीं होती होगी। परंतु इस समूचे प्रतीक का विस्तृत वर्णन योग के तथा तंत्र के ग्रंथों में पाया जाता है। उन सब में प्रमुख ग्रंथ है पूर्णानंद लिखित षट्चक्र निरूपण।

हम सब लोगों में ये चक्र या पद्म उनके दल बंद होकर नीचे झुके हुये रहते हैं। ये चक्र मेरूदण्ड के भीतर तथा चित्रणी नाड़ी के मध्य में होते हैं। कुण्डलिनी शक्ति जाग्रत होकर जब ब्रम्हानाड़ी से ऊपर की ओर बढ़ती है, तब उसके मार्ग में होने वाले ये चक्र खिल जाते हैं तथा उनके मुंह ऊपर हो जाते हैं। षट्चक्र निरूपण ग्रंथ में मूलाधार चक्र से लेकर सहस्रार चक्र तक

सात चक्रों का वर्णन विस्तार से किया गया है। कुण्डलिनी के चक्र

(1)मूलाधार चक्र :

मूलाधार शब्द से ही व्यक्त होता है कि यह चक्र सुषुम्ना की जड़ के नीचे स्थित है। अतः मूलाधार चक्र सुषुम्ना में गुदा और लिंग के बीच चार अंगुल विस्तार वाले कंद के रूप में स्थित सबसे पहला चक्र है। यह चार दलों वाले लाल (रक्तवर्ण) कमल के रूप वाला चक्र है। इन चार दलों पर चार अक्षर व, श, ष, स स्वर्णांकित हैं, जो कि कुण्डलिनी के ही रूप हैं। इस कमल के पुष्प के मध्य में पीत वर्ग है, जिसके मध्य में अधोमुखी चोटी वाला तथा पीछे की तरफ मुख वाला त्रिकोण देश है जो योनि व भग रूप है तथा जिसे कामरूप कहते हैं। इस योनि के मध्य में सूक्ष्म प्रज्वलित अग्नि शिखा सम गतिशील, सम्वेदन शील, परम तेजवान् वीर्य को जो सम्पूर्ण शरीर में विचरण करता, कभी ऊपर तथा कभी नीचे जाना रहता है, स्वयंम् लिंग (स्वयं पैदा होने वाला) कहा गया है। यह स्वयंभू लिंग आकृति में अण्डाकार तथा छोटे जामुन या छोटे आलूबुखारा के समान है। इस स्वयंभू लिंग लिंग का ऊपरी भाव मणि के समान चमकता है। सहस्त्रार चक्र में स्थित काम कलारूप त्रिकोण की प्रतिकृति ही यह त्रिपुर (स्वयंभूलिंग को घेरे हुये अग्नि चक्र त्रिकोण) है, जिसमें कुण्डलिनी शक्ति स्थित है। यह चक्र कुण्डलिनी शक्ति का आधार होने से मूलाधार कहा जाता है। बिजली के समान चमकदार कुल कुण्डलिनी शक्ति इस स्वयंभू लिंग के ऊपरी भाग से सर्पाकार रूप में छिपटी हुई लिंग के द्वार को अपने सिर से बंद किए हैं। इस प्रकार से कुण्डलिनी के द्वारा उसकी सुषुप्तावस्था में सुषुम्ना का छिद्र ब्रम्ह द्वार या ब्रम्ह रन्ध्र जो कि सहस्त्रार तक चला जाता है, बंद रहता है। ऐसी स्थिति में सुषुम्ना में प्राणादि का प्रवेश नहीं हो सकता है। यह तप्त स्वर्ण के समान निर्मल तेज प्रभा रूपतीनों तत्वों (सत्व, रज तथा तम) की जननी कुण्डलिनी विष्णु की शक्ति है। सुषुम्ना भी काम बीज के साथ कुण्डलिनी के स्थान में स्थित है। इन तीनों का सम्मिलित नाम त्रिपुरा भैरवी है, जिसे बीज तथा परम शक्ति भी कहा है।

मूलाधार चक्र में चार प्रकार की शक्तियां कार्य करती है। इसमें चार प्रकार की चेतना विद्यमान हैं। इस चक्र पर योग नाड़ियां मिलती हैं। इन प्राणशक्ति रूप योग नाड़ियों के द्वारा ही चार दल रूप आकृतियों कि उत्पत्ति होती है। इन दलों में कुण्डलिनी, प्राणशक्ति रूप नाड़ियों के द्वारा ही प्रसृत

(फैलती) है। इस प्राण शक्ति के साथ दलों का भी लय हो जाता है। इस चक्र पर चार प्रकार के सूक्ष्म शब्द होते हैं जिनके बीज मंत्र वं, शं, षं तथा सं हैं। इसका तत्व बीज 'लं' है। यह पृथ्वी तत्व प्रधान है। ऐरावत हाथी बीजवाहक है। जिस पर इंद्र विराजमान है। ब्रम्ह इसके देवता है, भू लोक हैं, गंध गुण है, डाकिनी शक्ति हैं, चोकोण यंत्र है, नासिका ज्ञानेन्द्रिय, गुदा कर्मेन्द्रिय है तथा यह अपान वायु का स्थान है। योगशिखोपनिषद में इस मूलाधार चक्र पर ही जीव रूप में शिव का स्थान बताया गया है, जहाँ पर शक्ति कुण्डलिनी विद्यमान है।1 (योगशिखोपनिषद – 5/5 से 8 तक।) वहीं से वायु, अग्नि, बिन्दु, नांद, हंस तथा मन की उत्पत्ति होती है। (वाराहोपनिषद – 5/50 से 52 तक) इस स्थान को काम रूप पीठ कहा गया है, जो सब इच्छाओं को पूरा करने वाला है। योगशिखोपनिषद में (6/22 से 32 तक) में आधार ब्रम्ह में वायु आदि के लय होने से मुक्ति बताई गयी है। इस आध ार ब्रम्ह से ही विश्व की उत्पत्ति तथा विश्व का लय होता है। इस आधार शक्ति की निद्रा अवस्था में विश्व भी निद्रावस्था में रहता है। इस शक्ति के जाग जाने पर त्रिलोकी जाग जाती है। इस आधार चक्र के ज्ञान से समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं। आधार चक्र मेंवायु को रोकने से, गगन्नातर में स्थित, शरीर कम्पन तथा निरन्तर नृत्य होता रहता है। उसे सब विश्व आधार रूप अर्थात् ब्रम्ह रूप ही दिखता है। सब देवता तथा वेद इस आधार के ही आश्रित है। इस आधार चक्र के पीछे त्रिवेणी संगम (इडा, पिगंला, सुषुम्ना का मिलन) होता है इसे मुक्त त्रिवेणी भी कहते हैं। इस स्थान पर स्थान तथा जल पीने से मनुष्य सब पापों से मुक्त हो जाता है आधार में लिंग (अन्तर–चेतना) तथा द्वार वा ग्रंथि है, जिसके भेदन से मोक्ष प्राप्त होता है। आधार चक्र के पीछे सुषुम्ना में सूर्य तथा चन्द्र स्थित हैं। वहां विश्वेश्व विद्यमान है जिसका ध्यान करने से व्यक्ति ब्रम्हामय हो जाता है। (योगशिखोपनिषद 6/22 से 32 तक।) जो बुद्धिमान व्यक्ति मूलाधार चक्र पर ध्यान करते हैं, उन्हे दार्दुरी सिद्धि प्राप्त होती है तथा वे क्रम से भूमि त्याग और आकाश गमन की सिद्धि प्राप्त होती है इस चक्र पर ध्यान करने से योगी का शरीर उत्तम कीर्तिवाला होता है, उसकी जठराग्नि में वृद्धि होती है, वह रोग से मुक्त होता है तथा उसे पटुता और सर्वज्ञता प्राप्त हो जाती है उसे भूत, वर्तमान तथा भविष्य सबका उनके कारणों सहित ज्ञान हो जाता है। बिना सुने तथा अध्ययन किये विज्ञानों का पूर्ण ज्ञान इस चक्र पर ध्यान करने वाले को प्राप्त होता है।

उसकी जीभ पर सरस्वती का निवास होता है। उसे जप मात्र से मंत्र सिद्धि हो जाती है। वह जरामरण, दुःखों तथा पापों से मुक्तहो जाता है। उसकी सब इच्छायें पूर्ण होती हैं। वह अंदर, बाहर सब जगह स्थित, श्रेष्ठ तथा पूजनीय, मुक्ति देने वाले शिव के दर्शन करता है। आन्तिरिक शिव को न पूजकर बाहरी देव मूर्तियों को पूजने वाला उसके समान है जो हाथ की मिठाई को छोड़कर भोजन की खोज में फिरता है। जो अपने स्वयंभू लिंग पर निरन्तर ध्यान करता रहता है, उसे निश्चित ही शक्ति प्राप्त होती है। छः मास में उसे सफलता प्राप्त होती तथा उसकी वायु सुषुम्ना में प्रवेश करती है। जो मन को जीत लेता है तथा वायु और वीर्य रोक लेता है वह इस लोक तथा परलोक दोनों में सफल होता है। (शिव–संहिता – 5/86 से 97 तक)

2. "स्वाधिष्ठानचक्र"

यह चक्र लिंग के मूल में स्थित है। लिंग के मूल में स्थित होने के कारण इस चक्र को मेढ़ाधार भी कहते हैं। यह चक्र जल तत्व का केंद्र है जल तत्व का केंद्र होने से इस चक्र को जलमण्डल भी कहते हैं जल तत्व प्रधान होने से इसका संबंध कफ, शुक्र आदि जलीय विकारों से है। यह चक्र मूलाधार से ऊपर की तरफ है। यह सिंदूर वर्ण के छः दलों वाला चक्र है। इन दलों के ऊपर ब, भ, म, य, र तथा ल अक्षर अंकित हैं। गरूड़ पुराण में इसे सूर्य के समान वर्ण वाला बताया गया है इसका तत्व बीज "वं" है। इस चक्र पर सूक्ष्म ध्वनियां होती है जिनके बीज मंत्र बं, भं, मं, यं, रं तथा लं है। इस चक्र के षट्दल कमल के मध्य में श्वेत अर्ध चंद्र स्थित है। जो वरूण से संबंधित उस चन्द्रमा के मध्य में बीज मंत्र है जिसकेबीच में विष्णु, शाकिनी एक साथ विद्यमान है। इस चक्र का बीज बाहन मकर है जिस पर वरूण विराजते हैं। भुवः लोक है। इसके देवता विष्णु तथा उनका वाहन गरूड़ है। मण्डल का आधार अर्ध चन्द्र है। तत्व का रंग शुभ्र है। गुण आकुन्चन रसवाह है। इस चक्र की शक्ति शाकिनी है।शिव–संहिता के अनुसार यह शक्ति राकनी है तत्व का गुण रस है। ज्ञानेद्रिंय रसना तथा कर्मेद्रिय लिंग है इस चक्र का प्राण उपान वायु है। इस चक्र पर छः प्रकारकी सूक्ष्म शक्तियां कार्य करती हैं तथा छः योग नाड़ियां यहाँ मिलती हैं। इस चक्र का तत्व जल है और जल तत्व के देवता वरूण है, इसीलिये यह वरूण से संबंधित है। यहां जो नाड़ियां मिलती है, उनका संबंध कामेन्द्रिय तथा उसके कार्यो से है। उससे संबंधित संवेग तथा अनुभूतियां इनके द्वारा उत्तेजित होती है। लिंग में उत्तेजना इन

नाड़ियों के द्वारा ही होती है। अतः कामोत्तेजना का ये ही मूल कारण है कामोत्तेजना के साथ–साथ द्वेष, शिथिलता, जड़ता, झूठा अभिमान, संदेह तिरस्कार तथा क्रूरता का उदय भी हो जाता है। शिव–संहिता के अनुसार (5/100 से 103) के अनुसार इस चक्र पर ध्यान करने वाला कामनियों के प्रेम का पात्र बन जाता है। स्त्रियां उसे भजती तथा उसकी सेवा करती है। इस चक्र पर ध्यान करने वाला न जाने न अध्ययन किये हुये शास्त्रों तथा विद्वानों को निः संकोच होकर जान लेता है। वह रोग तथा भय मुक्त होकर संसार में विचरण करता है। इस चक्र पर ध्यान करने वाला योगी मृत्यु को भक्षण कर लेता है और अपने आप किसी के द्वारा नष्ट नहीं होता है। उसे अणिमा, लघिमा आदि सिद्धियां प्राप्त हो जाती हैं। उसके शरीर में समान रूप से वायु प्रसृत होता रहता है तथा उस के शरीर में निश्चित रूप से रस की वृद्धि होती है। सहस्त्रदल कमल के नीचे से जो अमृत की वर्षा निरंतर होती है उसमें भी वृद्धि हो जाती है। इस चक्र का भी संबंध मेरूदण्ड–रज्जू की सुषुम्ना, बज्रा, चित्रणी तथा ब्रमनाड़ी इन चारों नाड़ियों से होता है। इस पर संयम करने से ब्रम्हचर्य पालन करने में बहुत सहायता मिलती है। वैसे तो यह भी निम्नचक्र है जो कि तम प्रधान अपान वायु कें प्रदेश में स्थित है किंतु इस पर भी वैराग्य युक्तभावना से काम को जीता जा सकता है। इस चक्र के देवता भगवान विष्णु का ध्यान पूर्णतया सिद्ध हो जाने पर साधक के पालन कार्य करने की शक्ति आ जाती है और वह पालन जैसे कार्य को कर सकता है।

3. मणिपुर चक्र :

मणिपुर चक्र सुषुम्ना में कुछ ऊपर चलकर नाभि स्थान में यह चक्र स्थित है। यह तीसरा शक्ति केंद्र है इसे नाभि चक्र भी कहते हैं। मनुष्य शरीर का केंद्र नाभि है यहीं से अनेक नाड़ियां निकलती तथा मिलती हैं। यह समान वायु का स्थान है। मेरूदण्ड–रज्जू की सुषुम्ना, बृज्रा, चित्रणी तथा ब्रम्हानाड़ी से यह चक्र संबंधित है। यह चक्र दस दलों वाले नील कमल के समान है। जिन पर ड, ढ, ण, त, थ, द, घ, न, प तथा फ अक्षर अंकित है। शिव–संहिता (5/104) ने इसे हेमवर्ण बताया है तथा गरूड़ पुराण में लाल कहा है। यह अग्नि तत्व का केंद्र है गुण प्रसरण उष्णवाह है। तत्व बीज "रं" है। बीज वाहन मेष पर अग्नि देवता विराजमान है। लोक स्वः है। इसके देवता रूद्र हैं। गुण रूप है। इसकी शक्ति लाकिनी है। इसका यंत्र त्रिकोण है। यह रूप तन्मात्रा से उत्पन्न देखने की शक्ति चक्षु ज्ञानेन्द्रिय तथा इसका अग्नि तत्व

से उत्पन्न चलने की शक्ति चरण कर्मेंद्रिय का स्थान है। तत्व रक्त वर्ण है इस केंद्र पर होने वाली सूक्ष्म ध्वनियों के बीज मंत्र डं, ढं, णं, तं, थं, दं, धं, नं, पं तथा फं है। इस चक्र पर परा शब्द का ध्यान किया जाता है इस चक्र पर दस सूक्ष्म शक्तियां कार्य कर रहीं हैं। इस केंद्र पर दस योग नाड़ियां मिलती हैं। इस चक्र का संबंध निद्रा, भूख और प्यास लगाने से इससे साहस, वीरता, आक्रामकता, प्राणशक्ति, प्रबलता तथा जवानीपन आता है। साथ–साथ विपरीत रूप से द्वेष, लज्जा, भय आदि आते हैं। कमल पुष्प के मध्य में एक लाल त्रिकोण है। जिस पर महारूद्र नीले रंग वाली चर्तुभुजा शक्ति लाकिनी के साथ विद्यमान हैं नाभि चक्र से ही गर्भ के बालक को पालक रस प्राप्त होता है। इसी मार्ग से सम्पूर्ण शरीर का ज्ञान प्राप्त होता है। जैसा कि "नाभि चक्रे कायव्यूहज्ञानम्" (यो.सू. 3/29) से व्यक्त होता है इस पर ध्यान करने से सम्पूर्ण शरीर का ज्ञान हो जाता है। शिव–संहिता (5/106, 107, 108) में मणिपुर चक्र में ध्यान करने से पाताल सिद्धि बतायी गयी है। जिससे साधक सदैव सुखी रहता है। ऐसा ध्यान करने वाला इच्छाओं का स्वामी बन जाता है तथा दुःख मृत्यु और रोग से छुटकारा पा जाता है। वह दूसरों के शरीर में प्रवेश कर सकता है उसमें स्वर्ण आदि बनाने की शक्ति आ जाती है। उसे गड़े वा छिपे धन के दर्शन होते है। उसमें औषधियों की खोज करने की शक्ति आ जाती है। उसे अति दूर तथा अति पास के पदार्थो का ज्ञान हो जाता है। नाभि चक्र पर सूर्य की स्थिति मानी गई है। योग सूत्र में इस नाभि में स्थित सूर्य में संयम करने को कहा गया है। इस नाभि स्थित सूर्य में संयम करने से भुवनों का ज्ञान प्राप्त होता है। (यो–सूत्र – 3/261) व्यास भाष्य में तो सातों लोकों के भुवन तथा उसमें आने वाले ग्राम, नगर और उनके अंतर्गत आने वाले घट पटादि पदार्थों को भुवन शब्द के अन्तर्गत लेकर उन सबका साक्षात्कार उस नाभि स्थित सूर्य में संयम करने से बताया गया है। नाभि शरीर का माध्यम है। उसमें सूर्य की स्थिति होने से उस सूर्य की प्रकाश किरणें सम्पूर्ण देश (शरीर) में व्याप्त हो जाती हैं। जो पिण्डश्र में है, वही ब्रम्हाण्ड में है। अतः इस नाभिस्थ सूर्य में संयम करने से सम्पूर्ण भुवनों का साक्षात्कार हो जाता है। इस नाभिस्थ सूर्य की किरणों द्वारा अमृत का पान करते रहने से ही मृत्यु होती है। अतः योगी को ऐसी योग क्रियायें करनी चाहिये जिनसे वह स्वयं ही अमृत पान करता रहे जैसा कि पूर्व में विवेचन किया जा चुका है। उपर्युक्त कथन से स्पष्ट हो जाता है कि इस केंद्र के द्वारा

ही सम्पूर्ण शरीर के अवयवों तथा सम्पूर्ण विश्व के भुवनों का ज्ञान प्राप्त हो सकता है। इस चक्र के देवता रूद्र का ध्यान पूर्णतया सिद्ध होने पर साधक में संहार शक्ति आ जाती है और वह संहार जैसे कार्य को कर सकता है।

4. अनाहत चक्र :

अनाहत चक्र 12 सुनहरे दलों वाला चौथा चक्र हृदय स्थान में स्थित है। यह चक्र वायु तत्व प्रधान तथा अरूण रंग वाला है। शिव–संहिता (5/109) में इसका रंग गहरा लाल (रक्त वर्ण) कहा गया है तथा गरूड़–पुराण में सुनहरे रंग का बताया गया है। यह सिंदूरी रंग के द्वादश पद्मम के सृदश है। इस चक्र के दल क, ख, ग, घ, ड, च, छ, ज, झ, ण, ट तथा ठ इन बारह अक्षरों वाले हैं इसका तत्व बीज 'यं' है तथा तत्व बीज का वाहन मृग है। महर्लोक इसका लोक है। ईशान–रूद्र इसके अधिपति देवता अपनी त्रिनेत्र चतुर्भुजा काकिनी देवशक्ति के साथ है। इसका यंत्र षटकोणाकार धूम रंग, गुण स्पर्श, ज्ञानेन्द्रिय स्पर्श, तन्मात्रा से उत्पन्न स्पर्श की शक्ति, त्वचा का केंद्र तथा कर्मेन्द्रिय वायु तत्व से उत्पन्न पकड़ने की शक्ति हाथ का केंद्र है। यह चक्र प्राण तथा जीवात्मा का स्थान है। इस चक्रके मध्य में दो त्रिकोण, उनके मध्य में एक त्रिकोण और स्थित है, जिस पर ईश्वर लाल काकिनी शक्ति के साथ विद्यमान हैं। इस चक्र पर अनाहृत नाद होता है। यह नाद बिना दो पदार्थों के संयोग से ही होता रहता हैं यहा कहा जा सकता है कि इस चक्र पर रहस्यमयी ध्वनि होती रहती है। इस केन्द्र पर होने वाली सूक्ष्म ध्वनियों के कं, खं, गं, घं, डं, चं, छं, जं, झं, णं, टं तथा ठं बीज मंत्र हैं। इस चक्र पर बारह सूक्ष्म शक्तियां क्रियाशील हैं। यहा 12 योग नाड़ियां मिलती हैं। इस तत्व बीज की मृग के समान तिरछी गति है। इसका वायु स्थान नाक तथा मुख से बहने वाले प्राणवायु का मुख्य स्थान है। यह अंतःकरण का मुख्य स्थान है। यह आशा, चिन्ता, सन्देह, पश्चाताप, आत्मभावना तथा अहं मन्यता आदि जैसे स्वार्थवादी मनोभावों का स्थान है। योगसूत्र 'हृदये चित्त संवित्' (3/34) से स्पष्ट है कि हृदय में संयम करने से साधक को चित्त का साक्षात्कार होता है। इस चक्र में बाणलिंग नामक परम तेज है, इसके ऊपर ध्यान करने से साधक विश्व के दृष्ट तथा अदृष्ट भोग विषयों को प्राप्त कर लेता है। शिव–संहिता (5/111) में इस चक्र के पिनाकी सिद्ध तथा काकिनी देवी अधिष्ठात्री है। इस चक्र पर ध्यान करने वाले के प्रति स्वर्ग अप्सरायें काम से व्याकुल होकर मोहित होती हैं उसे अपूर्व ज्ञान प्राप्त होता है, वह

त्रिकालदर्शी, दूर के शब्द को सुनने की शक्ति वाला, सूक्ष्मदर्शी तथा इच्छानुसार आकाश गमन की शक्ति वाला होता है। वह सिद्धों तथा योगिनियों के दर्शन प्राप्त करता है जो नित्य परं बाण लिंग पर ध्यान करता है उसे आकाश गमन, तथा इच्छा मात्र से सर्वत्र पहुंचने की शक्ति प्राप्त हो जाती है। (शिव संहिता 5/111 से 114 तक) तंत्रों में इसके ऊपर ध्यान करने का फल कवित्व शक्ति तथा जितेन्द्रियता आदि बताया है। शिव सार तंत्र में तो इस चक्र की अनाहत नाद को ही सदाशिव कहा गया है। इस स्थान में त्रिगुणमय ऊँकार व्यक्त होता है। इसी चक्र में बाण लिंग है। जीवात्मा का यही स्थान है।

5. विशुद्ध चक्र :

इस चक्र का स्थान कंठ देश है।

विशुद्धि तनुते यस्मात् जीवस्य हंसलोकनात्।
विशुद्धं पद्माख्यातमाकाशाख्यंमहत्परम्।।

हंस (आत्मा) के अवलोकन से जीव शुद्ध होता है इसलिये यह पद्म विशुद्ध आकाशीय, महत और परम चक्र कहलाता है। सुषुम्ना तथा सुषुम्नाशीर्ष के मिलने वाले स्थान पर यह केन्द्र माना जा सकता है। यह सुषुम्ना नाड़ी में हृदय के ऊपर टेंटुए में स्थित है। मुख्य रूप से यह स्थान शरीर पर्यंत बहने वाले उदान वायु तथा बिंदु का है। यह धूम रंग के प्रकाश से उज्जवलित षोडश पद्म जैसी आकृति वाला चक्र है जिसके सोलह दलों पर सोलक अक्षर अ, आ, इ, ई, उ ऊ, ऋ, ॠ, ऌ, ॡ, ए, ऐ, ओ, औ, अं तथा अः है। (शिव–संहिता 5/116) में इसका कांतिमान् स्वर्ण के समान रंग बताया गया है और गरूड़–पुराण में इसका रंग चन्द्रमा के समान बताया गया है। यह पूर्ण चन्द्र के सदृश गोलाकार आकाश तत्व का मुख्य स्थान है अर्थात् यह आकाश तत्व प्रधान चक्र है। इसका तत्व बीज 'हं' है। हाथी इसके तत्व बीज का वाहन है जिस पर प्रकाश देवता आरूढ़ है। तत्व बीज की गति हाथी की गति के समान घुमाव के साथ है। शब्द तत्व का गुण है। इस कमल के बीच वाले स्थान के मध्य में श्वेत चन्द्र पर शुभ्र हाथी है जिस पर बीज मंत्र हं है। इसके अधिपति देवता पंचमुख वाले सदाशिव ही अपनी शक्ति चतुर्भुजा शाकिनी के साथ वहीं विद्यमान हैं। कुछ ग्रंथों में यहां के देवता का आधा शुभ्र तथा आधा सुवर्णमय अर्द्धनारी नटेश्वर रूप है जो कि अपने अनेक हाथों में वज्र आदि अनेक वस्तुएं लिये हुये बैल पर विराजमान है। उनका आधा शरीर त्रिनेत्र मुखों वाली पंचमुखी तथा दस हाथों वाली सदागौरी है। (ल्वहं प्उउवतजंस.

पजल दक तिममकवउ इल डपतबमं म्सपंकमए चंहम 242) कल्याण योगांक पृष्ठ संख्या 397 का (425) शिव – संहिता (5/116) के अनुसार इस चक्र के सिद्ध छगलांड, शाकिनी देवी अधिष्ठात्री तथा जीवात्मा देवता है। इस चक्र का यंत्र पूर्ण चन्द्र के समान गोल आकार वाला आकाशमंडल है। इसका लोकजन है। शब्द तन्मात्रा से उत्पन्न श्रवण शक्ति स्त्रोत का स्थान इसकी ज्ञानेन्द्रिय है। कर्मेन्द्रिय आकाश तत्व से उत्पन्न वाकशक्ति वाणी का स्थान है। यहां इस केंद्र पर 16 सूक्ष्म शक्तियां क्रियाशील हैं। यह 16 योग नाड़ियों के मिलने का स्थल है। इस चक्र पर होने वाली सूक्ष्म ध्वनियों के अं, आं, इं, ईं, उं, ऊं, ऋं, लृ, लृं, एं, ऐं, ओं, औं, अं, तथा अः बीज मंत्र हैं। इस चक्र पर ध्यान करने वाली ही सचमुच बुद्धिमान है। उसे चारों वेदों का उनके रहस्य सहित ज्ञान हो जाता है। (शिव संहिता 5/117) वह कवि, महाज्ञानी, शातचित्त, निरोग, शोकहीन तथा दीर्घजीवी होता है। इस स्थान पर चित्त के स्थिर होने से वह आकाश के समान विशुद्ध हो जाता है। भाषा तथा सप्त स्वरों का यह उद्गम स्थान है। इस चक्र पर ही मणिपूर चक्र का अव्यक्त शब्द "परा" बैखरी रूप में निकलता है। "बैखरी" रूप से इस चक्र पर "शब्द ब्रम्हा" के प्रकट होने से यहां संयम करके साधक "दिव्य–श्रुत" हो जाता है। योग सूत्र "कण्ठ कूपे क्षुत्पिपासा निवृतिः" (3/30) से यह स्पष्ट होता है कि कण्ठ के नीचे के गढ़े में प्राणादि का स्पर्श होने से मनुष्य को भूख–प्यास लगती है इसके (कण्ठकूप के) ऊपर संयम करने से प्राणादि का स्पर्श न होने के कारण भूख–प्यास से साधक मुक्त होता है। इस कण्ठ–कूप के नीचे एक कछुए के आकार वाली नाड़ी है जिसे कूर्मनाड़ी कहते हैं। इस कूर्मनाड़ी पर संयम करने से साधक का चित्त एवं शरीर स्थिर होता है। उसे कोई हिला नहीं सकता और न ही उसका मन ही विचलित हो सकता है (यो.सू. –"कूर्म नाड्यां स्थैयम् 3/31)। इस चक्र पर संयम करके स्थित रहने वाले साधक के क्रोधित होने पर त्रैलोक्य कम्पायमान हो जाता है। चित्त के इस चक्र में लीन होने पर योगी सब बाह्य विषयों को त्यागकर अपने अंदर ही रमण करता है। उसका शरीर क्षीण नहीं होता। हजार वर्षों तक उसकी पूर्ण शक्ति बनी रहेगी। वह वज्र के समान कठोर हो जाता है।2 इस चक्र के ऊपर ही 12 दलों वाला ललना चक्र है जो कि श्रृद्धा, संतोष, अपराध, दंभ, मान, स्नेह, शुद्धता, वैराग्य, मनोद्वेग तथा क्षुधा–तृषावृत्ति वाला है। (2 शिव संहिता 5/117 से 120 तक)

6. आज्ञा चक्र :

यह श्वेत प्रकाश के दो दल वाला छटा चक्र भ्रू–मध्य में स्थित है। इस चक्र का संबंध शीर्ष–ग्रंथि (च्पदमंस हसंदक) तथा पीयूषिका–पिण्ड (च्पजन. पजंतल ठवकल) से है। इस चक्र के दोनों दल पर क्रमशः ह तथा क्ष अक्षर हैं इसका तत्व लिंग आकार महत्तत्व है तत्व बीज ओम् तथा तत्व–बीज गति नाद है। इस चक्र का लोक 'तप' है इसके तत्व बीज का वाहन 'नाद' है जिस पर लिंग देवता विराजमान हैं। इस चक्र का यंत्र लिंगाकार है पाताल लिंग इस चक्र का लिंग है। इस पदम में श्वेत योनि त्रिकोण है जिसके मध्य में पाताल लिंग स्थित है। (ल्वहं दकेमसि बनसजनतमइलैतप क्मअं त्ंउैनानस . चंहम 115) कल्याण योगांक पृष्ट 396 (42) इस त्रिकोण में अग्नि, सूर्च तथा चंद्र मिलते हैं। इसके अधिपति देवता ज्ञानदाता परम शिव अपनी चतुर्भुजा षडानना हाकिनी शक्ति के साथ इस श्वेत पद्म पर विद्यमान हैं। शिव संहिता (5/122; 123; 124) में शुक्त महाकाल को इस चक्र के सिद्ध तथा हाकिनी देवी को अधिष्ठात्री बताया गया है। शरत्चंद्र के समान कांतिवान अक्षर 'ठँ' इस चक्र के मध्य में स्थित है। बुद्धिमान सन्यासी इसको जानकर कभी भी पतित नहीं होता। यह परम तेज प्रकाश सब तंत्रों में गोपनीय है। इस पर चिन्तन करने वाला निःसंदेह परम सिद्धि प्राप्त करता है। इस चक्र पर दो सूक्ष्म शक्तियां क्रियाशील हैं तथा यहां दो योग नाड़िया मिलती हैं। इस चक्र पर दो सूक्ष्म ध्वनियां निकलती हैं, जिसका बीज मंत्र 'हं' तथा 'क्षं' है यह चक्र मेरूदण्ड रज्जू के ऊपर सुषुम्ना शीर्ष में इड़ा, पिगंला तथा सुषुम्ना के संगम स्थान पर स्थित है। प्रथम चक्र मूलाधार से इड़ा पिगंला तथा सुषुम्ना अलग–अलग चलती हैं मध्य में सुषुम्ना तथा अगल बगल इड़ा, पिंगला रहती हैं जो कि सुषुम्ना शीर्ष में मिलती हैं जहां ये मिलती हैं वहीं आज्ञाचक्र है। इन तीनों के मिलने वाले स्थान को ही तीर्थराज कहा गया है। योगी इसी तीर्थराज पर स्नान करके सब पापो से मुक्त होते है, अतः इसे मुक्त त्रिवेणी कहा गया है। यह ज्ञानात्मक शक्तियों का केन्द्र है। बुद्धि, चित्त, अहंकार, संकल्प विकल्पात्मक मन तथा सूक्ष्म इंद्रियों की यहीं स्थिति हैं यह सचमुच में ज्ञान चक्र है। (ल्वहं प्उउवतजं दक तिममकवउ इल डपतबमं म्सपंकम चंहम . 243) इस चक्र पर महत्व तत्व और प्रकृति तत्व है यह अव्यक्त प्रणव रूप आत्मा का स्थान है। यहां से ही हमारी सब गतियां समन्वित होती है। इस केंद्र के द्वारा ही शारीरिक संतुलन बना रहता है इस

चक्र पर ध्यान करने से अन्य सब चक्रों पर ध्यान करने के समान फल होता है। (शिव–संहिता–5/114) अतः ध्यान करने में इस चक्र का महत्व अन्य सब चक्रों से अधिक है। इस केंद्र पर मन तथा प्राण की स्थिरता साधक को सम्प्रज्ञात समाधि प्रदान करती है। इस आज्ञा चक्र को शिव नेत्र भी कहते हैं इससे दिव्य दृष्टि प्राप्त होती है तुरीय अवस्था का यह मुक्ति को देनेवाला तीसरा लिंग (पाताल लिंग) स्वयं शिव ही हैं। इस चक्र पर ध्यान करने वाला योगी शिव के समान हो जाता है। (शिव–संहिता–5/125) शिव संहिता में इड़ा तथा पिंगला नाड़ियों को वरूणा और असी कहा गया है, जिससे बीच के स्थान वाराणसी में विश्वनाथ विद्यमान है इस क्षेत्र का माहात्म्य ऋषियों तथा शास्त्रों के द्वारा वर्णित है। (शिव–संहिता–5/126, 127) यह द्विदल आज्ञा चक्र महेश्वर का स्थान है जिसमें नाद, बिंदु तथा शक्ति विद्यमान है जो इस आज्ञा चक्र पर सदैव ध्यान करता है वह बिना किसी रूकावट के अपने पूर्व जन्मों के कर्म फलों को नष्ट कर देता है ऐसे योगी के लिए बाह्य जप, पूजा आदि व्यर्थ है। (शि संहिता – 5/138 से 140 तक) इस चक्र पर ध्यान करने वाले योगी के तो यक्ष, राक्षस, गन्धर्व, अप्सरा तथा किन्नर आदि चरणों के दास हो जाते हैं और उसकी आज्ञा का सदा पालन करते हैं। (शिव संहिता – 5/141) जीभ को तालूमूल में लगाकर इस आज्ञा चक्र पर एक क्षण के लिए ध्यान द्वारा मन को स्थिति करने से सब भय और पाप उसी क्षण नष्ट हो जाते हैं। इस चक्र पर ध्यान करने से साधक इच्छाओं के बंधन से मुक्त होकर आनंद भोगता है। मरने के समय इस चक्र में ध्यान करने से साधक इस जीवन से मुक्त होकर परमात्मा में लीन हो जाता है जो इस चक्र पर खड़े या चलते, फिरते, सोते या जागते ध्यान करता है वह पाप कर्म करके भी उनसे मुक्त रहता है। इस आज्ञा चक्र के महत्व का वर्णन नहीं किया जा सकता ब्रम्हा आदि देवता भी उसे आंशिक रूप में ही जानते हैं। (शिव संहिता– 5/142, 143, 145, 149 तक।)

आज्ञाचक्र के समीप मनश्चक्र तथा सोम चक्र भी है इनका संबंध बौद्धिक कार्य तथा योग अनुभूतियों से है। मनश्चक्र षट्दल पद्म है, शब्द, स्पर्श, रूप, रस तथा गंध इन पांचों विषयों के दल स्थान पांच दल है। स्वप्नगत अनुभव तथा निर्मूल भ्रम आदि सब ज्ञान छटे दल पर आधारित है। इस मनश्चक्र के कुछ ऊपर की तरफ सोलह दलों वाला सोम चक्र स्थित है यह परोपकारी मनोभावों तथा संकल्प नियंत्रण का स्थान है। अनुकम्पा,

सौम्यता, धैर्य, वैराग्य, गम्भीरता, चिन्तन, निश्चय संकल्प, सच्चाई तथा महामनस्कता आदि से इस चक्र का संबंध है। यही जीवात्मा की तुरीयातीत अवस्था में रहने का स्थान निरालम्पुरी है। योगियों को इसी स्थान पर ध्यान करने से तेजोमय ब्रम्हा के दर्शन होते हैं।

आज्ञाचक्र के पास ही कारण शरीर रूप सात कोशों का स्थान है, जिनके द्वारा सूक्ष्म तथा भौतिक शरीर बनते हैं। इन्दु, बाघिनी, नाद, अर्धचन्द्रिका, महानाद, कला तथा उन्मनी ये इन सप्त कोशों के नाम है। उन्मनी कोश में पहुंचने पर जीव को फिर जन्म नहीं लेना पड़ता। वह अपनी इच्छा वा परमेश्वर की इच्छा से जन्म तो ग्रहण कर सकता है किन्तु उसे देह धारण करने की अवस्था में भी आत्मस्वरूप की विस्मृति नहीं होती।

7. सहास्त्रार चक्र :

यह सहस्त्र दलों वाला पद्म ब्रहन्मस्तिष्कीय बल्क है जो कि विभिन्न खण्डों तथा परिवलनों से युक्त है। यह जीवात्मा का स्थान है यहीं शिव और शक्ति मिलन का विशिष्ट एवं उच्चतम् स्थान है। यहीं आध्यात्मिक परमानंद की अनुभूति होती है यह ठीक ब्रम्हरंध्र के ऊपर स्थित है। यह समस्त शक्तियों का केंद्र है। तालुमूल से सुषुम्ना मूलाधार तक चली गयी है। यह सब नाड़ियों से धिरी तथा उनका आश्रय है। (शिव संहिता–5/150, 151) तालुमूल पर स्थित सहस्त्र दल पद्म के मध्य में पीछे की मुख वाली योनि (शक्ति केंद्र) है जो कि सुषुम्ना का मूल है और सुषुम्ना रंध्र के सहित उसे ब्रम्ह रंध्र कहते हैं। सुषुम्ना रंन्ध्र में कुण्डलिनी शक्ति सदैव विद्यमान रहती है। (शिव संहिता–5/152 से 154 तक) सहस्त्रार चक्र को दशमद्वार, ब्रम्हा स्थान, ब्रम्हरंध्र, निर्वाण चक्र आदि भी कहते हैं। इन दलों पर 'अ' से लेकर 'क्ष' तक के सब अक्षर है। ये 50 अक्षर जो अन्य चक्रों के दलों पर हैं, सब इस चक्र के दलों पर भी है। सहस्त्र दल कमल पर ये 50 अक्षर 20 बार आ जाते हैं। मूलाधार चक्र से आज्ञा चक्र तक के कुल दल और मात्रायें पचास–पचास हैं सहस्त्रार चक्र के सब मिला कर विवर हैं एक विवर से दूसरे विवर तक 50 दल होते हैं। अतः इस चक्र में एक हजार दल हुए। इस केद्रं से सब सूक्ष्म नाड़ियों का संबंध है। सब चक्रों की सूक्ष्म–योग–नाड़ियां यहां विद्यमान हैं बीज रूप में यहां सब कुछ है। यह सम्पूर्ण चेतना का केंद्र स्थान है इस पद्म के मध्य त्रिकोण को घेरे हुये पूर्ण चंद्र है। यहीं शिव और शक्ति का परम मिलन होता है यहां उन्मनी अवस्था प्राप्त करना ही तांत्रिक साधना का परम

लक्ष्य है। कुण्डलिनी शक्ति छःओं चक्रों में से होती हुई अंत में सहस्त्रार मे लीन हो जाती है यहां पहुंच कर सबका कार्य समाप्त हो जाता है। यहां कुण्डलिनी शक्ति सहस्त्रार में सदैव परमात्मा के साथ रहने वाली पराकुण्डलिनी से मिलती है। इस चक्र का लोक सत्य है तथा तत्व, तत्वा तीत है। इस चक्र का तत्वबीज विसर्ग, तत्व बीज वाहन बिंदु तथा तत्वबीज गति बिंदु है। इस चक्र का यंत्र शुभ्रवर्ण पूर्ण चंद्र है। इस चक्र के मध्य में श्वेत पूर्ण चंद्र से घेरे हुये त्रिकोण में परब्रम्हा अपनी महाशक्ति के साथ विराजमान हैं। इस सहस्त्रार चक्र में अनेक रूपों में सब चक्रों की ध्वनियां तथा शक्तियां अपनी कारणावस्था में विद्यमान है। इसके द्वारा केवल सब चक्रों का ही प्रतिनिधित्व नहीं होता, बल्कि यह सम्पूर्ण शरीर का चेतना केंद्र है। इसमें सूक्ष्म रूप से सब स्थित है। यहीं निष्क्रिय एवं गतिशील चेतना का मिलन होता है। अर्थात् यह कुण्डलिनी शक्ति के दोनों रूपों निष्क्रिय और चंचल का मिलन स्थान है यह चक्र मुक्ति देने वाला है। कुण्डलिनी के इसमें लीन होने के साथ–साथ विभिन्न चक्रों की विभिन्न शक्तियां, बुद्धि, चित्त, अंहकार तथा मन के साथ यहां पूर्ण रूप से परमात्मा में लीन हो जाती है। जिसके कारण प्रपन्चात्मक जगत् की सत्ता समाप्त होकर असम्प्रज्ञात समाधि प्राप्त होती है। मूलाधार चक्र पर व्यक्ति की जो चेतना शक्ति जागृत होकर सहस्त्रार पर पहुंचती है वह वहां पर पहुंच कर परम शक्ति हो जाती है। ऐसी स्थिति में ज्ञात, ज्ञेय तथा ज्ञान की त्रिपुटी नहीं रह जाती। सब आत्मा रूप ही हो जाता है।

इस चक्र पर मन और प्राण के स्थिर होने पर सर्वचित्त वृत्तियों का निरोध हो जाता है, जिसे असम्प्रज्ञात समाधि कहते हैं। शिव संहिता ने सहस्त्रार को मुक्तिदाता तथा ब्रम्हाण्ड रूपी शरीर से बाहर माना है इसे ही अविनाशी क्षय तथा बुद्धि रहित शिव का स्थान कैलाश पर्वत कहा है। (शिव संहिता – 5/186, 187) इस परम पवित्र स्थान के ज्ञान मात्र से व्यक्ति जन्म मरण से छुटकारा पा जाता है। इस ज्ञान योग के अभ्यास से व्यक्ति में संसार के संहार तथा रचने की शक्ति प्राप्त हो जाती है। जो परम हंस के स्थान कैलाश अर्थात्, सहस्त्र दल कमल पर ध्यान लगता है वह साधक मृत्यु, रोग एवं दुर्घटनाओं से मुक्त होकर बहुत काल तक रहता है। जो योगी परमेश्वर में मन को लीन कर लेता है उसे निश्चिय समाधि प्राप्त होती है। (शिव संहिता – 5/188 से 190 तक)।

इस प्रकार इन चक्रों का वर्णन देखकर इसका प्रतीकात्मक स्वरूप

स्पष्ट हो जाता है। आधुनिक वैज्ञानिक जानकारी के साथ तालमेल रखने वाला तथा इनके स्पष्टीकरण देने का प्रयास अनेक विद्वानों ने किया है। कुछ लोगों के अनुसार रक्तवाहिनियों के अंर्तगत जो "फ्लेक्सस" होते हैं, वे ही योग के चक्र हो सकते है। कैवल्यधाम से प्रकाशित "योग मीमांसा" पत्रिका के जुलाई 1966 के अंक में डा. म.वि. आपटे ने चक्रों के संबंध में इस प्रकार स्पष्टीकरण दिया है –

मूलाधार चक्र के चार दल है, क्योंकि गुदा एवं जननेंद्रिय के बीच की सीवनी, जिसको अंग्रेजी में पेरीनियम कहते हैं, उसके चार कोण होते हैं। यौन क्रिया के प्रमुख अंग छः है। जैसे दो हाथ, दो आंखे, मुख तथा जननेंद्रिय। इसीलिये जननेंद्रिय के मूल में स्थित स्वाधिष्ठान चक्र के छः दल हैं। नाभिचक्र के दस दल लैं, क्योंकि पाचन के अंग दस हैं, जैसे आमाशय, पक्वाशय, छोटीआंत के दो हिस्से, बड़ी आंत के तीन हिस्से, पित्ताशय, यकृत तथा अग्न्याशय। हृदय की मुख्य रक्तवाहिनीयां बारह है। कंठचक्र में सोलह दल इसलिए हैं, क्योंकि वर्णमाला में "अ" से "अं" तक स्वरों की संख्या सेालक है। आज्ञा चक्र के दल दो हैं क्योंकि आंखे, जिनसे आज्ञा देते हैं, वे दो ही हैं।

कुण्डलिनी के द्वारा चक्रों का भेदन होने पर उन चक्रों के जो पृथ्वी आदि तत्व हैं, उन पर साधक का अधिकार हो जाता है। सहस्त्रार चक्र में स्थित पराशिव के साथ आधार शक्ति का मिलन होने पर अज्ञान नष्ट होता है। और जीवमुक्ति की अवस्था प्राप्त होती है।

चक्रों की वास्तविकता का प्रमाण :

मनुष्य शरीर में ऐसे अनेकों केंद्र है जिनमें जीवनी शक्ति प्राणऊर्जा की बहुलता होती है। इन्हें मर्म स्थान कहते हैं तथा इनकी संख्या सात सौ बतायी गयी है इन स्थानों में प्राणशक्ति में कमीवेशी होने पर स्वास्थ्य संतुलन बिगड़ जाता है और व्यक्ति को अनेकों बीमारियां धर दबोचती हैं। चिकित्सा विज्ञान में मर्म स्थानों का विशेष महत्व बतलाया गया है। जापान और चीन में एक्यूपंचर एवं एक्यूप्रेशर चिकित्सा प्रणाली का मूल आधार यही मर्म स्थान है।

सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक कार्लफीड ने 'द वाइटल सेण्टर्स आफ मैन' ग्रंथ में कहा है कि मर्म स्थानों पर तंत्रिका तंतु अधिक एकत्रित और सघन होते हैं तथा वे केंद्रो से एवं एक–दूसरे से संबंधित भी होते हैं। मर्म स्थानों के

अतिरिक्त शरीर में सात ऐसे प्रमुख केंद्र हैं जिनमें प्राणशक्ति और अतीन्द्रिय क्षमताओं का अपान वैभव प्रसुप्त स्थिति में दबा पड़ा है। इन स्थानों को 'चक्र' या 'प्लेक्सस' कहते हैं इन केद्रों में ज्ञान तंतु अधिक मात्रा में उलझे होते हैं। स्थूल तथा सूक्ष्म शरीर के मिलन स्थान पर चक्रों की उपस्थिति बताई गयी है।

योरोप के प्रख्यात मनोवैज्ञानिक पैरासेल्सस ने शरीरस्थ सूक्ष्म केद्रों में 'एस्ट्रम' (तारा) नाम से उन पर प्रकाश डालते हुए उन्हें शक्ति पुंज बताया है। उनके मतानुसार इन सूक्ष्म केंद्रो के माध्यम से गृह नक्षत्रीय एवं ब्रम्हमाण्डीय शक्तियां मनुष्य के शरीर में अवतरित होती हैं। योगाचार्यों ने चक्रों को 'कमल' नाम से भी सम्बोधित किया है जैसे – हृदय कमल, नाभिकमल सहस्त्रार कमल आदि। अंग्रेजी में इन्हें 'प्लेक्सस' और जापानी 'जैन' धर्म की व्याख्यानुसार 'क्यूसोस' कहा गया है। चीन की ताओ प्रणाली में चक्रों को विश्व ब्रम्हमाण्ड में बिखरे हुये नर और नारी– 'यांग ओर यिन' शक्तियों के एकत्रीकरण–सम्मिलन का केन्द्र बताया गया है।

सर जॉन बुडरफ ने ''पॉवर एज रिअलिटी'' एवं ''शक्ति एवं शाक्त'' में वी.जी.रेले ने ''द मिस्टीरियस कुण्डलिनी'' में श्रीदास गुप्ता ने ''हिस्ट्री ऑफ इण्डियन फिलॉसिफी'' वॉल्यूम ''र'' में इवान्स वेण्टज ने ''टिबेटन बुक ऑफ ग्रेट लिबरेशन'' में एवं एज.जी. बेन्स ने ''माइथालॉजी ऑफ सोल'' में जिस सूक्ष्म शरीर की संरचना का वर्णन किया है वह मूलतः वही है जो योग व तंत्र पर भारतीय दर्शनकारों ऋषिगणों ने निरूपित किया है। योग कुण्डल्युपनिषद्, महानिवार्ण तंत्र, षट्चक्र निरूपणम, ध्यान बिंदु उपनिषद्, योगार्णव तंत्र कुलार्णव तंत्र, शारदातिलक इत्यादि ग्रंथो में कुण्डलिनी–इड़ा पिंगला सुषुम्ना, मेरूदण्ड एवं मूलाधार सहस्त्रार रूपी दो केन्द्रों संबंधी जो विवेचन किया गया है उसे विज्ञान सम्मत भाषा में एक सीमा तक प्रस्तुत किया जा सकता है।

सुषुम्ना को वैज्ञानिक स्थायी विद्युतीय द्विध्रुव केन्द्र (इलेक्ट्रिक डायपोल) मानते हैं जिसका अधोभाग जो काण्डा इक्वाइना कहलाता है ऋण आवेशयुक्त है तथा ऊर्ध्व वाला ''सोरिब्रम'' नामक भाग धन आवेश युक्त। काडा इक्वाइना व मूलाधार चक्र की स्थिति एक है। इसी प्रकार सेरिब्रम में विद्यमान विद्युत स्फुल्लिंगों का फब्बारा ''एसेण्डिंग रेटीकुलर एक्टीवेटिंग सिस्टम'' सहस्त्रार के समकक्ष माना जाता है। असामान्य स्थिति में जब प्रवाह नीचे से ऊपर की ओर बहता है तो इसे काम बीज से ब्रम्हा बीज की महायात्रा कहते हैं जो मेरूदण्ड

रूपी देवयान मार्ग पर पूरी की जाती है। अलंकारिक रूप से इन्हीं अंगों को विभिन्न नाम दे दिये गये हैं पर होते ये सूक्ष्म विद्युतचुम्बकीय प्रवाह के रूप में ही हैं। वैज्ञानिक बताते हैं कि शरीर में कुल मिलाकर मोटे तौर पर एक लाख वोल्ट प्रति सेण्टीमीटर का विद्युत दबाव होता है। अन्य जीवधारियों की भांति यह भी जननेन्द्रियों से, त्वचा से, श्वास मार्ग से क्रमशः नित्य प्रतिदिन क्षरित होकर नष्ट होता रहता है। मात्र मनुष्य को यह सामर्थ्य विधाता से मिली है कि वह स्खलन के पतन गर्त में पड़ी आत्मसत्ता को ऊर्ध्वगामी बना सके, क्षरण को रोक सके एवं योगाभ्यास द्वारा चक्र बंधन करते हुये सहस्त्रार को जगाकर अपना तेजोवलय बढ़ा सके।

चक्र जैसा कि बताया जा चुका है – कुल छः है। सातवें सहस्त्रार की गिनती इसमें नहीं होती। उसे सहस्त्र दल कमल कहा गया है। नीचे से ऊपर ये चक्र जिस क्रम मे हैं व उनका एनाटॉमी से किस सीमा तक संबंध है,उसका संक्षिप्त विवेचन यहां किया जा रहा है।

(1) मूलाधार चक्र सुषुम्ना (स्पाइनल कॉर्ड की मध्य केनाल): के निचले सिरे पर मेरूदण्ड के काक्सीजियल क्षेत्र – पेंरीनियम में गुदा व जननेन्द्रिय के मध्य स्थित होता है। यहां पर काण्डा इक्वाइना से निकली सेक्रल नर्वरूट्रष कई गुच्छक बनाकर सेक्रल एवं पेरिनियम प्लेक्सस बनाती है। इन नाड़ी गुच्छकों में प्रवाहित विद्युतधारा चक्रवात के समान ऊर्जा उत्पन्न करने वाली भँवर बनाती है। इसी सूक्ष्म विद्युत प्रवाह को मूलाधार शक्ति कहते है जिसका मूल कार्य है उत्पादन प्रजनन। कुण्डलिनी महाशक्ति साढ़े तीन कुण्डलिन में लिपटी यहीं सोयी पड़ी रहती है। यहां स्थित प्रवाह को 4 पंखुडियो वाले कमल के रूप में योगीजन देखते व इन्हें 4 वृत्तियों परमानन्द, सहजानन्द, योगानन्द, वीरानन्द का प्रतीक बताते हैं। यहां जो शब्द ब्रम्हा के कम्पन होते हैं उससे जो शब्द की व्युत्पत्ति होती है उसे "ल" नाम दिया गया है। इस चक्र की तन्मात्रा गंध व तत्व पृथ्वी हैं।

(2) स्वाधिष्ठान चक्रः जो मूलाधार से चार अंगुल ऊपर हाइपोगेस्ट्रियम के स्थान पर अवस्थित है। यहीं पर स्थित प्लेक्सस सुषुम्ना के दोनों ओर स्थित सिम्पैथेटिक गैंगलियान व सुषुम्ना के कड़ी गुच्छकों से मिलकर बनता है। इससे जुड़ा आंतरिक अंग एड्रीनल ग्रंथि है जो एड्रीनेलीन हार्मोन से संबंधित है। तनाव से जूझने व प्रतिकूलताओं से मोर्चा लेने की क्षमता इसी की सक्रियता से आती है। उत्सर्जन–विसर्जन इसका मूल कार्य है। किन्तु

इसके जागृत होने पर बलिष्ठता व स्फूर्ति बढ़ती है। आलस्य–प्रमाद–अवज्ञा–अविश्वास आदि दुर्गुण मिटते हैं। यहां स्थित कमल की छः पंखुरियां मानी गयी हैं। बीज मंत्र "ब" हैं। इस चक्र की तन्मात्रा रस एवं तत्व जल है। मूलाधार व स्वाधिष्ठान दोनों ही एक समूह में आते हैं एवं इनका मिलन बिंदु रूद्रग्रंथि कहलाती है।

(3) मणिपूर चक्र : शरीर संरचना की दृष्टि से यह नाभिस्थान में मेरूदण्ड के लम्बर रीजन में होता है। यही पर सोलर प्लेक्सस होता है जो सिम्पैथेटिक गैंगलियान एवं बेगस नर्व के नाड़ी गुच्छकों से मिलकर बनता है। इससे जुड़ी ग्रंथि पैन्क्रियाज है जो हार्मोन्स के अतिरिक्त एन्जाइम्स बनाती है इस चक्र के जागरण से संकल्प बल व पराक्रम बढ़ता है। पाचन क्रिया में सहायता इसका मूल कार्य है। मनोविकार घटते है एवं परमार्थ कार्यो में रूचि बढ़ती है। नाभि स्थित यह कमल दस दल वाला माना गया है। इसका बीज मंत्र "रं" तन्मात्रा रूप (दृश्य) एवं तत्व "अग्नि" है। इसके जागरण से शरीर की तीनों अग्नियां जागृत होती हैं व ऊर्ध्वगमन में सहायक बनती हैं। इस चक्र के उद्‌भूत ऊर्जा को अपनी चक्रा मशीन से जापान के डॉ. हिरोशिमा मोटोयामा ने मापा व ग्राफ पर अंकित भी किया है। तिब्बती इसे मणिपद्‌म कहते हैं।

(4) अनाहत चक्र : जो हृदय के पीछे कार्डियक प्लेक्सस के स्थान पर अवस्थित माना जाता है। यहां सिम्पैथेटिक गैंगलियान चेन व सुषुम्ना तथा वेगस के नर्वतन्तु मिलकर एक जाल बनाते व पूरे हृदय क्षेत्र को ऊर्जा देने की भूमिका निभाते हैं। यह बारह पंखुरियों वाला कमल माना गया है। पेसमेकर का ऊर्जा स्त्रोत यही है। इसे भाव संस्थान भी माना गया है। कलात्मक उमंग–रसानुभूति व कोमल संवेदनाओं का उत्पादक स्त्रोत यही चक्र है। इसके जागरण से उदार सहकारिता, परमार्थ, परायण,ता, "वसुधैव कुटुम्बकम" के भाव उभरते हैं। थाइमस इससे जुड़ी ग्रंथि है। प्राण धारण एवं उसका सुनियोजन इसका मूल कार्य है। इस चक्र का बीज मंत्र "यं" है। अनाहत नाद अथवा शब्द ब्रम्हा की केन्द्र स्थली इसे माना गया है। शब्द ही इसकी तन्मात्रा एवं वायु इसका तत्व है। अनाहत व मणिपूर दोनों मिलकर सूर्य खण्ड बनाते व विष्णु ग्रंथि कहलाते हैं।

(5) कण्ठ में विशुद्धि चक्रः थायराइड ग्रंथि तथा उसी के पीछे स्थित फेरेन्जियल व लेरोन्जियल प्लेक्सस इससे संबंधित है। इस चक्र के जागरण

से अतीद्रिंय क्षमता प्रसुप्त बीजाकुंर फूट पड़ते है। यह चक्र सीधे अचेतन मन व चित्त संस्थान को प्रभावित कर दायें मस्तिष्क के "साइलेंष्ट एरिया" को जगाता है यहां स्थित कमल 16 पंखुरियों वाला है एवं इसका बीज मंत्र 'हं' है। स्पर्श इसकी तन्मात्रा एवं आकाश तत्व है।

(6) आज्ञा चक्र अंतिम चक्र हैः जो विशुद्धि के साथ मिलकर चन्द्र समूह तथा ब्रम्ह ग्रंथि बनाता है। इसका बीज मंत्र "ऊँ" एवं तत्व मनस् है। इसे द्विदलीय कहा गया है। जो पीनियल व पीट्यूटरी ग्रंथि से मिलकर बनते हैं। मध्य की सीध में ये दोनों ग्रंथियां है जो पूरे शरीर की गतिविधियों का संचालन करती है। इसके जागरण से दिव्य चक्षु खुल जाते हैं। लिम्बिक सिस्टम व हाइपोथेलेमस में जागृति आने से मस्तिष्क की सभी परतें खुल जाती हैं। व्यष्टि सत्ता समष्टि चेतना से संबंध जोड़ने में सक्षम हो जाती है।

(7) सहस्त्रार चक्रः कुण्डलिनी जागरण की महायात्रा का अंतिम पड़ाव है जो मस्तिष्क में इन्टरनल कैप्सूल व रेटीकूलर एक्टीवेटिंग सिस्टम में अवस्थित माना जाता है। यहां से स्फुल्लिंग सहस्त्रों की संख्या में उठते हैं। इसलिये इसे सहस्त्रार कहा गया है। इसे ब्रम्हलोक एवं ब्रम्हरंध्र भी कहते हैं। आज्ञा चक्र इसका उत्पादन केंद्र होने के नाते जुड़ा है। सहस्त्रार उत्तरी ध्रुव है जो ब्रम्हमाण्डीय चेतना से जुड़कर ब्रम्हानंद की प्राप्ति कराता है। सहस्त्रार के जागरण का अर्थ है सारे ग्रे मैटर के केंद्रो का जागरण। सुषुम्ना नाड़ी जो मूलाधार चक्र से चलकर ऊपर बढ़ती है। अपने दोनों ओर बायें से दायें व फिर दायें से बायें इड़ा (गंगा) एवं पिंगला (यमुना) नाड़ियों को लेकर चलती है। इड़ा बायीं ओर होती है व चन्द्र नाड़ी कहलाती है एवं नेगेटिव आवेश युक्त होती है। पिंगला दायीं ओर होती है व सूर्य नाड़ी कहलाती है एवं पॉजीटिव आवेशयुक्त होती है। इन दासे के संगम स्थल हैं, जो सुषुम्ना रूपी सरस्वती से मिलकर मूलाधार व आज्ञा चक्र पर त्रिवेणी संगम बनाते हैं। इड़ा व पिंगला नाड़िया पेरासिम्पैथेटिक व सिम्पैथैटिक सिस्टम का प्रतिनिधित्व करती हैं।

वस्तुतः कुण्डलिनी शक्ति का स्थूल एनॉटामी की शब्दावली में वणना करना असंभव है। जो भी परिकल्पना विभिन्न मनीषियों ने की है उसका सार उपर्युक्त वर्णन माना जा सकता है। कुण्डलिनी सर्पेण्टपॉवर, जीवनीशक्ति, फायर ऑफ लाइफ न जाने कितने नामों से जानी जाती है। षट्चक्र वेधन व कुण्डलिनी जागरण से उद्भूत ऊर्जा व्यक्ति को ब्रम्हवर्चस सम्पन्न बनाती

है।

कुण्डलिनी के षट्चक्र और उनका वेधन :

कुण्डलिनी योग के अर्न्तगत शक्तिपात विधान का वर्णन अनेक ग्रंथो में मिलता है। योग वशिष्ठ, तेजबिन्दुपनिषद्, योग चूड़ामणि, ज्ञान संकलिनी तंत्र, शिव पुराण, देवी भागवत्, शाण्डिल्योपनिषद्, मुक्तिकोपनिषद्, हठयोग संहिता, कुलार्णव तंत्र, योगनी तंत्र, घेरण्ड संहिता, कंठ श्रुति, ध्यान बिन्दुपनिषद्, रूद्र यामल तंत्र, योग कुण्डलिनी उपनिषद्, शारद तिलक आदि ग्रंथों में इस विद्या के विभिन्न पहलुओं पर प्रकाश डाला गया है। फिर भी वह सर्वांगपूर्ण नहीं है कि उस उल्लेख के सहारे कोई अजनबी व्यक्ति साधना करके सफलता प्राप्त कर सके। पात्रता युक्त अधिकारी साधक और अनुभवी सुयोग्य मार्ग–दर्शक की आवश्यकता को ध्यान में रखते हुये ही ग्रंथों में इस गूढ़ विद्या पर प्रायः संकेत ही किये गये हैं।

योरोपियन तांत्रिकों में जोकब बोहम की ख्याति कुण्डलिनी साधकों के रूप में रही है। उनके जर्मन शिष्य जान जार्ज गिचेल की लिखी पुस्तक 'थियोसॉफिक प्रोक्टिका' में चक्र संस्थानों का विशद वर्णन है जिसे उन्होंने अनुसंधानों और अभ्यासों के आधार पर लिखा है। जैफरी हडस्वन ने इस संदर्भ में गहरी खोजे की हैं और आत्म विज्ञान एवं भौतिक विज्ञान के समन्वयात्मक आधार लेकर चक्रों में सन्निहित शक्ति और उसके उभार उपयोग के संबंध में विस्तारपूर्वक प्रकाश डाला है।

कुण्डलिनी साधना को अनेक स्थानों में षट्चक्र वेधन की साधना भी कहते हैं। पंचकोषी साधना या पंचाग्नि विद्या भी गायत्री की कुण्डलिनी या सावित्री साधना के ही रूप हैं। एम.ए. की डिग्री है इसे हिन्दी, अंग्रेजी, इकॉनामिक्स किसी भी विषय से प्राप्त किया जा सकता है। उसी प्रकार आत्म तत्व, आत्म शक्ति एक ही है, उसे प्राप्त करने के लिए विवेचन, विश्लेषण और साधना विधान भिन्न हो सकते हैं। इसमें किसी तरह का विरोधाभास नहीं है। तैत्तरीय आरण्यक में चक्रों को देवलोक एवं देव संस्थान कहा गया है। शंकराचार्य कृत आनंद लहरी के 17 वें श्लोक में भी ऐसा ही प्रतिपादन है। योग दर्शन समाधिपाद का 36 वाँ सूत्र है –

''विशोकाया ज्योतिष्मती''

इसमें शोक संतापों का हरण करने वाली ज्योति शक्ति के रूप में कुण्डलिनी शक्ति की ओर संकेत है।

इस समस्त शरीर को संपूर्ण जीव कोषों का महाशक्ति की प्राण प्रक्रिया संभाले हुये है। उस प्रक्रिया के दो ध्रुव दो खण्ड हैं। एक को चय प्रक्रिया (एनाबॉलिक एक्शन) तथा दूसरे को अपचय प्रक्रिया (कैटाबालिक एक्शन) कहते हैं। इसी को दार्शनिक भाषा में शिव एवं शक्ति भी कहा जाता है शिव क्षेत्र सहस्त्रार तथा शक्ति क्षेत्र मूलाधार कहा गया है। इन्हें परस्पर जोड़ने वाली, परिभ्रमणशील शक्ति का नाम कुण्डलिनी है।

सहस्त्रार और मूलाधार का क्षेत्र विभाजन करते हुये मनीषियों ने मूलाधार से लेकर कण्ठ पर्यन्त का क्षेत्र एवं चक्र संस्थान 'शक्ति' भाग बताया है। और कण्ड से ऊपर का स्थान 'शिव' देश कहा है।

मूलाद्धाराद्धि षट्चक्रं शक्तिस्थानमूदीरतम्।

कण्ठादुपरि मूर्द्धान्तं शाम्भव स्थानमुच्यते।। – वराहश्रुति

मूलाधार से कण्ठपर्यन्त शक्ति का स्थान है। कण्ठ के ऊपर से मस्तक तक शाम्भव स्थान है। यह बात पहले कही जा चुकी है।

मूलाधार से सहस्त्रार तक की, काम बीज से ब्रम्ह बीज तक की यात्रा को ही महायात्रा कहते हैं। योगी इसी मार्ग को पूरा करते हुये परम लक्ष्य तक पहुंचते हैं। जीव सत्ता–प्राण शक्ति का निवास जननेंद्रिय मूल में है। प्राण उसी भूमि में रहने वाले रज वीर्य से उत्पन्न होते हैं। ब्रम्ह सत्ता का निवास ब्रम्हलोक में – ब्रम्हरंध्र में माना गया है। यह द्युलोक – देवलोक स्वर्गलोक है आत्मज्ञान का ब्रम्हज्ञानका सूर्य इसी लोक में निवास करता है। कमल पुष्प पर विराजमान ब्रम्हा जी – कैलाशवासी शिव और शेषशायी विष्णु का निवास जिस मस्तिष्क मध्य केंद्र में है – उसी नाभिक (न्यूक्लियस) को सहस्त्रार कहते हैं। आत्म साक्षात्कार की प्रक्रिया यहीं सम्पन्न होती है। पतन के स्खलन के गर्त में पड़ी क्षत–विक्षत आत्म सत्ता अब ऊर्ध्वगामी होती है तो उसका लक्ष्य इसी ब्रम्हलोक तक, सूर्यलोक तक पहुंचना होता है। योगाभ्यास का परम पुरूषार्थ इसी निमित्त किया जाता है। कुण्डलिनी जागरण का उद्धेश्य यही है।

आत्मोत्कर्ष की महायात्रा जिस राजमार्ग से होती है उसे मेरूदण्ड या सुषुम्ना कहते हैं। उसका एक सिरा मस्तिष्क का दूसरा काम केंद्र का स्पर्श करता है। कुण्डलिनी साधना की समस्त गतिविधियां प्रायः इसी क्षेत्र को परिष्कृत एवं सरल बनाने के लिए है। इड़ा पिंगला के प्राण प्रवाह इसी क्षेत्र को दुहराने के लिए नियोजित किये जाते हैं। साबुन पानी में कपड़े धोये जाते

हैं। झाड़ू झाड़ने से कमरे की सफाई होती है। इड़ा पिंगला के माध्यम से किये जाने वाले नाड़ी शोधन प्राणायाम मेरूदण्ड का संशोधन करने के लिए हैं। इन दोनों ऋणात्मक और घनात्मक शक्तियों का उपयोग सृजनात्मक उद्धेश्य से भी होता है।

इमारते बनाने वाले कारीगर कुछ समय नींव खोद कर गड्डा करते हैं, इसके बाद वे ही दीवार चुनने के काम में लग जाते हैं, इसी प्रकार इड़ा पिंगला संशोधन और सृजन का दुहरा काम करते हैं जो आवश्यक है उसे विकसित करने में वे कुशल माली की भूमिका निभाते हैं। यों आरंभ में जमीन जोतने जैसा ध्वंसात्मक कार्य भी उन्हें को करना पड़ता है पर यह उत्खनन निश्चित रूप से उन्नयन के लिए होता है। माली भूमि खोदने, खरपतवार उखाड़ने, पौधे की कांट–छांट करने का काम करते समय ध्वंस में संलग्न प्रतीत होता है, पर खाद पानी देने रखवाली करने में उसकी उदार सृजनशीलता का भी उपयोग होता है। इड़ा पिगंला के माध्यम से सुषुम्ना क्षेत्र में काम करने वाली प्राण विद्युत का विशिष्ट संचार क्रम प्रस्तुत करके कुण्डलिनी जागरण की साधना सम्पन्न की जाती है।

मेरूदण्ड को राजमार्ग–महामार्ग कहते हैं। इसे धरती से स्वर्ग पहुंचने का देवयान मार्ग कहा गया है। इस यात्रा के मध्य में सात लोक हैं। इस्लाम धर्म के सातवें आसमान पर खुदा का निवास माना गया है। ईसाई धर्म में भी इससे मिलती–जुलती मान्यता है। हिन्दु धर्म के भूः भुवः स्वः जनः तपः महः सत्यम् यह सात लोक प्रसिद्ध हैं। आत्मा और परमात्मा के मध्य इन्हें विराम स्थल माना गया है। लंबी मंजिलें पूरा करने के लिए लगातार ही नहीं चला जाता। बीच–बीच में विराम भी लेने होते हैं। रेलगाड़ी गन्तव्य स्थान तक बीच के स्टेशनों पर रूकती–कोयला, पानी लेती चलती है। इन विराम स्थलों को चक्र कहा गया है। चक्रों की व्याख्या दो रूपों में होती है। एक अवरोध के रूप में दूसरे अनुदान के रूप में। महाभारत में चक्रव्यूह की कथा है। अभिमन्यु उसमें फँस गया था। वेचन कला का समुचित जानकारी न होने से वह मारा गया था। चक्रव्यूह में सात परकोटे होते हैं। इस अलंकारिक प्रंसग को आत्मा का सात चक्रों में फँसा होना कह सकते हैं। भौतिक आकर्षणों की, भ्रान्तियों की विकृतियों की चहारदीवारी के रूप में भी चक्रों की गणना होती है। इसलिये उसके वेधन का विधान बताया गया है। रामचंद्र जी ने बाली को मार सकने की अपनी क्षमता का प्रमाण सुग्रीव को दिया था। उन्होंने सात

ताड़ वृक्षों को एक बाण से बेधकर दिखाया था। इसे चक्र वेधन की उपमा दी जा सकती है। भागवत में माहाक्य में धुन्धकारी प्रेत के बाँस की सात गाठे फोड़ते हुए सातवें दिन कथा प्रभाव से देव देहधारी होने की कथा है। इसे चक्र वेधन का संकेत समझा जा सकता है।

चक्रों को अनुदान केंद्र इसलिए कहा जाता है कि उनके अंतराल में दिव्य सम्पदायें भरी पड़ी हैं। उन्हें ईश्वर ने चक्रों की तिजोरियों में इसलिए बंद करके छोड़ा है कि प्रौढ़ता पात्रता की स्थिति आने पर ही उन्हें खेलने उपयोग करने का अवसर मिले। कुपात्रता अयोग्यता की स्थिति में बहुमूल्य साधन मिलने पर तो अनर्थ ही होता है। कुसंस्कारी संताने उत्तराधिकार में मिली बहुमूल्य सम्पदा से दुर्व्यसन अपनाती है और विनाश पथ पर तेजी से बढ़ती हैं। छोटे बच्चों को बहुमूल्य जेवर पहना देने से उनकी जान जोखिम का खतरा उत्पन्न हो जाता हैं। धातुओं की खदानें जमीन की ऊपरी परत पर बिखरी नहीं होती, उन्हें प्राप्त करने के लिए गहरी खुदाई करनी पड़ती है। मोती प्राप्त करने के लिए समुद्र में गहरे गोते लगाने पड़ते हैं यह अवरोध इसलिए है कि साहसी और सुयोग्य सत्पात्रों को ही विभूतियों का वैभव मिल सके। मेरूदण्ड में अवस्थित चक्रों को ऐसी सिद्धियों का केंद्र माना गया है जिसकी भौतिक ओर आत्मिक प्रगति के लिए नितान्त आवश्यकता रहती हैं।

चक्रवेधन, चक्रशोधन, चक्र परिष्कार, चक्र जागरण आदि नामों से बताये गयें विवेचनों एवं विधानों में कहा गया है कि इस प्रयास से अद्क्षताओं एवं विकृतियों का निराकरण होता है। जो उपयुक्त है उसकी अभिबृद्धि का पथ प्रशस्त होता है। सत्प्रवृत्तियों के अभिवर्धन, दुष्प्रवृत्तियों के दमन में यह चक्र वेधन विधान कितना उपयोगी एवं सहायक है इसकी चर्चा करते हुये शारदातिलक ग्रंथ के टीकाकार ने 'आत्मविवेक' नामक किसी साधना ग्रंथ का उद्घरण प्रस्तुत किया है कहा गया है कि –

गुदलिग्डान्तरे चक्रमाधारं तु चतुर्दलम्।
परमः सहजस्तद्वदानन्दो वीरपूर्वकः।।
योगानन्दश्च तस्य स्यादीशानादिदले फलम्।
स्वाधिष्ठानं लिंगमूले षट्पत्रञत्र क्रमस्य तु।।
पूर्वादिषु दलेष्वाहुः फलान्येतान्यनुक्रमत्।
प्रश्रयः क्रूरता गर्वो नाशो मूर्च्छा ततः परम।
अवज्ञा स्यादविश्वासो जीवसय चरतो ध्रुवम।

नाभौ दशदलं चक्रं मणिपूरकसंज्ञकम्।।
सुषुप्तिरत्र तृष्णा स्यादीर्ष्या पिशुनता तथा।
लज्जा भयं घृणा मोहः कषायोऽथ विषादिता।।
हृदयेऽनाहतं चक्रं दलैर्द्वादशाभिर्युतम्।
लौलयं प्रनाशः कपटं वितकोऽप्यनुतापिता।।
आशा प्रकाशश्चिन्ता च समीहा ममता ततः।
क्रमेण दम्भोवैकल्यं विवेकोऽहंक्वतिस्तथा।।
फलान्तेयानि पूर्वादिदलस्थस्यात्मनो जगुः।
कण्ठेऽस्ति भारतीस्थानं विशुद्धिः षोडशच्छदम्।।
तत्र प्रणव उद्गीथो हुँ फट् वषट् स्वधा तथा।
स्वाहा नमाऽमृतं सप्त स्वराः षडजादयो विष।।
इति पूर्वादिपत्रस्थे फलान्यात्मनि षोडश।।

गुदा और लिंग के बीच चार पंखुरियों वाला आधार चक्र है। वहाँ वीरता और आनंद भाव का निवास है। इसके बाद स्वाधिष्ठान चक्र लिंग मूल में है। उसकी छः पंखुरियाँ है। इसके जागृत होने पर क्रूरता, गर्व, आलस्य, प्रमाद, अवज्ञा, अविश्वास, आदि दुर्गुणों का नाश होता हैं नाभि में दस दल वाला मणिपूर चक्र है। यह प्रसुप्त पड़ा रहे तो तृष्णा, ईर्ष्या, चुगली, लज्जा, भय, घृणा, मोह आदि कषाय–कल्मष मन में जड़ जमाये पड़े रहते हैं। हृदय स्थान में अनाहत चक्र है। यह बारह पंखुरियों वाला है। यह सोता रहे तो लिप्सा, कपट, तोड़फोड़, कुतर्क, चिन्ता, मोह, दम्भ, अविवेक, अहंकार से भरा रहेगा। जागरण होने पर यह सब दुर्गुण हट जायेंगे। कण्ठ में विशुद्धाख्यचक्र है, यह सरस्वती का स्थान है। यह सोलह पंखुरियों वाला है। यहां सोलह कलाएँ सोलह विभूतियाँ विद्यमान हैं। विषद, स्वधा, स्वाहा, अमृत सप्त स्वर आदि का निवास है। इस आज्ञा चक्र का जागरण होने से यह सभी शक्तियाँ जाग पड़ती है।

श्री हडसन ने अपनी पुस्तक 'साइन्स आव सीथरशिप' में अपना मत व्यक्त किया है। प्रत्यक्ष शरीर में चक्रों की उपस्थिति का परिचय तन्तु गुच्छकों के रूप में देखा जा सकता है। अन्तदर्शियों का अनुभव इन्हें सूक्ष्म शरीर में उपस्थित दिव्य शक्तियों का केन्द्र संस्थान बताया है। कुण्डलिनी के बारे में उनके पर्यवेक्षण का निष्कर्ष है कि वह एक व्यापक चेतना शक्ति है। मनुष्य के मूलाधार चक्र में उसका सम्पर्क तन्तु है जो व्यक्ति सत्ता को विश्व सत्ता

के साथ जोड़ता है। कुण्डलिनी जागरण में चक्र संस्थानों में जागृति उत्पन्न होती है उसके फलस्वरूप पारभौतिक (सुपर फिजीकल) और भौतिक (फिजीकल) के बीच आदान–प्रदान का द्वार खुलता है। यही है वह स्थिति जिसके सहारे मानवीय सत्ता में अन्तर्हित दिव्य शक्तियों का जागरण सम्भव हो सकता है।

चक्रों की जागृति मनुष्य के गुण कर्म के स्वभाव को प्रभावित करती है। स्वाधिष्ठान की जागृति से मनुष्य अपने में नव शक्ति का संचार हुआ है अनुभव करता है उसे बलिष्ठता बढ़ती प्रतीत होती है। श्रम में उत्साह और गति में स्फूर्ति की अभिवृद्धि का आभास मिलता है। मणिपूर चक्र से साहस और उत्साह की मात्रा बढ़ जाती हैं। संकल्प दृढ़ होते हैं और पराक्रम करने के हौसले उठते हैं। मनोविकार स्वयमेव घटते हैं और परमार्थ प्रयोजनों में अपेक्षाकृत अधिक रस मिलने लगता है। अनाहत चक्र की महिमा हिन्दुओं से भी अधिक ईसाई धर्म के योगी बनाते हैं। हृदय स्थान पर गुलाब के फूल की भावना करते हैं और उसे महाप्रभु ईसा का प्रतीक 'आईचीन' कनक कमल मानते हैं। भारतीय योगियों की दृष्टि से यह भाव संस्थान हैं कलात्मक उमंगे – रसानुभूति एवं कोमल सम्वेदनाओं का उत्पादक स्त्रोत यही है। बुद्धि की वह परत जिसे विवेकशीलता कहते हैं। आत्मीयता का विस्तार सहानुभूति एवं उदार सेवा सहकारिता के तत्व इस अनाहत चक्र से ही उद्भूत होते हैं। कंठ में विशुद्ध चक्र है। इसमें बहिरंग स्वच्छता और अन्तरंग पवित्रता के तत्व रहते हैं। दोष व दुर्गुणों के निराकरण की प्रेरणा और तदनुरूप संघर्ष क्षमता यहीं से उत्पन्न होती हैं। शरीरशास्त्र में थाइराइड ग्रंन्थि और उससे स्त्रावित होने वाले हार्मोनों के सन्तुलन–असन्तुलन से उत्पन्न लाभ–हानि की चर्चा की जाती है। अध्यात्मशास्त्र द्वारा प्रतिपादित विशुद्ध चक्र का स्थान तो यहीं है, पर वह होता सूक्ष्म शरीर में है। उसमें अतीन्द्रिय क्षमताओं के आधार विद्यमान हैं। लघु मस्तिष्क सिर के पिछले भाग में है। अचेतन की विशिष्ट क्षमताएँ उसी स्थान पर मानी जाती हैं। मेरूदण्ड में कंठ की सीध पर अवस्थित विशुद्ध चक्र इस चित्त संस्थान को प्रभावित करता है। तदनुसार चेतना की अति महत्वपूर्ण परतों पर नियंत्रण करने और विकसति एवं परिष्कृत कर सकने के सूत्र हाथ में आ जाते हैं। नादयोग के माध्यम से दिव्य श्रवण जैसी कितनी ही परोक्षानुभूतियाँ विकसित होने लगती हैं।

सहस्त्रार मस्तिष्क के मध्य भाग में है। शरीर संरचना में इस स्थान पर

अनेक महत्वपूर्ण ग्रन्थियों से सम्बन्ध रैटिकुलर एक्टिवेटिंग सिस्टम का अस्तित्व हैं। वहां से जैवीय विद्युत का स्वयंभू प्रवाह उभरता है। वे धारायें मस्तिष्क के अगणित केन्द्रों की ओर दौड़ती हैं। इसमें से छोटी–छोटी चिनगारियाँ तरंगों के रूप में उड़ती रहती है। उनकी संख्या की सही गणना तो नहीं हो सकती, पर वे हैं हजारों। इसलिये हजार या हजारों का उद्‌बोधक 'सहस्त्र' शब्द प्रयोग में लाया जाता है। सहस्त्रार चक्र का नामकरण इसी आधार पर हुआ है सहस्त्र फन वाले शेषनाग की परिकल्पना का यही आधार है। यह संस्थान ब्रम्हाण्डीय चेतना के साथ सम्पर्क साधने में अग्रणी है इसलिये उसे ब्रम्हारन्ध्र या ब्रम्हलोक भी कहते हैं। रेडियो एरियल की तरह हिंदू धर्मानुयायी इस स्थान पर शिखा रखाते और उसे सिर रूपी दुर्ग पर आत्म सिद्धांतों को स्वीकृत किये जाने की विजय पताका बताते हैं। आज्ञा चक्र को सहस्त्रार का उत्पादन केन्द्र कह सकते हैं।

सभी चक्र सुषुम्ना नाड़ी के अन्दर स्थित हैं तो भी वे समूचे नाड़ी मण्डल को प्रभावित करते हैं। स्वचलित और ऐच्छिक दोनों ही संचार प्रणालियों पर इनका प्रभाव पड़ता है। अस्तु शरीर संस्थान के अवयवो को चक्रों द्वारा निर्देश पहुंचाये जा सकते हैं। साधरणतया यह कार्य अचेतन मन करता है और उस पर सचेतन मस्तिष्क का कोई बस नहीं चलता है। रोकने की इच्छा करने पर भी रक्त संचार रूकता नहीं और तेज करने की इच्छा होने पर भी उसमें सफलता नहीं मिलती। अचेतन बड़ा दुराग्रही है सचेतन की बात सुनने की उसे फुर्सत नहीं। उसकी मन मर्जी ही चलती है ऐसी दशा में मनुष्य हाथ–पैर चलाने जैसे छोटे–मोटे काम ही इच्छानुसार कर पाता है। शरीर की अनेच्छिक क्रिया पद्धति के सम्बन्ध में वह लाचार बना रहता है। इसी प्रकार अपनी आदत, प्रकृति, रूचि, दिशा को बदलने के मन्सूबे भी एक कोने पर रखे रह जाते हैं। ढर्रा अपने क्रम से चलता रहता है। ऐसी दशा में व्यक्तित्व को परिष्कृत करने वाली और शरीर तथा मनः संस्थान में अभीष्ट परिवर्तन करने वाली आकांक्षा प्रायः अपूर्ण एवं निष्फल बनी बनती है। चक्र संस्थान को यदि जागृत तथा नियन्त्रित किया जा सके तो आत्म जगत् पर अपना अधिकार हो जाता है। यह आत्म विजय अपने ढंग की अद्‌भुत सफलता है। इसका महत्व तत्वदर्शियों ने विश्व विजय से भी अधिक महत्वपूर्ण बताया है। विश्व विजय कर लेने पर दूरवर्ती क्षेत्रों से समुचित लाभ उठाना संम्भव नहीं हो सकता, उसकी सम्पदा का उपभोग, उपयोग कर सकने की अपने में सामर्थ्य

भी कहां है। किन्तु आत्म विजय के सम्बन्ध में ऐसी बात नहीं है। उसका पूरा–पूरा लाभ स्वयं ही उठाया जा सकता है। उस आधार पर बहिरंग और अन्तरंग क्षेत्रों की सम्पदा का प्रभु लाभ अपने आप को मिल सकता है।

मेरूदण्ड को शरीर–शास्त्री स्पाइनल कालम कहते हैं। स्पाइनल एक्सिस एवं वर्टीब्रल कॉलम–शब्द भी उसी के लिए प्रयुक्त होते हैं। मौटे तौर पर यह 33 अस्थि घटकों से मिलकर बनी हुई एक पोली दण्डी भर है। इन हड्डियों को पृष्ठ वंश–कशेरूका या 'वर्टिब्री' कहते हैं। स्थिति के अनुरूप इसका पांच भागों में विभाजन किया जा सकता है।

(1)ग्रीवा प्रदेश – सर्वाइकल रीजन–7 अस्थि खण्ड
(2)वक्ष प्रदेश – डार्सल रीजन–12 अस्थि खण्ड
(3)कटि प्रदेश – लम्बर रीजन – 5 अस्थि खण्ड
(4)त्रिक या वस्तिगत – सेक्रल रीजन – 5 अस्थि खण्ड
(5)चेचु प्रदेश – काक्सीजियल रीजन – 4 अस्थि खण्ड

मेरूदण्ड पोला है। उससे अस्थि खण्डों के बीच में होता हुआ यह छिद्र नीचे से ऊपर तक चला गया है। इसी के भीतर सुषुम्ना नाड़ी विद्यमान है। मेरूदण्ड के उपर्युक्त पांच प्रदेश सुषुम्ना में अवस्थित पांच चक्रों से संबंधित है। (1) मूलाधार चक्र – चेचु प्रदेश। (2) स्वाधिष्ठान – त्रिक प्रदेश। (3) मणिपूर चक्र – कटि प्रदेश।

(4) अनाहत – वक्ष प्रदेश। (5) विशुद्धि – ग्रीवा प्रदेश। छठे आज्ञा चक्र का स्थान मेरूदण्ड में नहीं आता। सहस्त्रार का संबंध भी रीढ़ की हड्डी से सीधा नहीं है। इतने पर भी सूक्ष्म शरीर का सुषुम्ना मेरूदण्ड पांच रीढ़ वाले और दो बिना रीढ़वाले सभी सातों चक्रों को एक ही श्रृखंला में बांधे हुए है। सूक्ष्म शरीर की सुषुम्ना में यह सातों चक्र जंजीर की कड़ियों की तरह परस्पर पूरी तरह सम्बद्ध हैं।

यहां यह तथ्य भली भांति स्मरण रखा जाना चाहिए कि शरीर विज्ञान के अर्न्तगत वर्णित प्लेक्सस, नाड़ी गुच्छक और चक्र एक नहीं है यद्यपि उनके साथ पारस्परिक तारतम्य जोड़ा जा सकता है। यों इन गुच्छकों की भी शरीर में विशेष स्थिति है और उनकी कायिक और मानसिक स्वास्थ्य को प्रभावित करने वाली प्रक्रिया होती रहती है।

शरीर शास्त्र के अनुसार प्रमुख नाड़ी गुच्छकों (प्लेक्ससेज) में 13 प्रधान हैं। उनके नाम हैं।

(1) हिपेटिक (2) सर्वाइकल (3) ब्रॉकियल (4) काक्सीजियल (5) लम्बर (6) सेक्रल (7) कार्डियक (8) इपेग्रेस्ट्रिक (9) इसोफैजियल (10) फरेन्जियल (11) पलमोनरी (12) लिंगुअल (13) प्रोस्टेटिक।

इन गुच्छकों के शरीर यात्रा में भूमिका सम्पन्न करते रहने के अतिरिक्त कुछ विलक्षण विशेषतायें भी पायी जाती है। उनसे यह प्रतीत होता है कि उनके साथ कुछ रहस्यमय तथ्य भी जुड़े हुए हैं। यह सूक्ष्म शरीर के दिव्य चक्रों के सान्निध्य में सम्पन्न होने वाला प्रभाव ही कहा जा सकता है।

चक्र शक्ति संचरण के एक व्यवस्थित, सुनिश्चित क्रम को कहते हैं। वैज्ञानिक क्षेत्र में विद्युत, ध्वनि, प्रकाश सभी रूपों में शक्ति का संचार, तरंगों के माध्यम से होता है। एक पूरी तरंग बनने के क्रम को एक चक्र (साइकिल) कहते हैं एक के बाद एक तरंग, एक के बाद एक चक्र बनने का क्रम चलता रहता है और शक्ति का संचरण होता रहता है। शक्ति की प्रकृति का निर्धारण इन्हीं चक्रों के क्रम के आधार पर किया जाता है। औद्योगित क्षेत्र में प्रयुक्त विद्युत के लिए अन्तर्राष्ट्रीय नियम है कि वह 50 साइकिल्स प्रति सेकेण्ड के चक्र क्रम की होनी चाहिए। विद्युत की मोटरों एवं अन्य यंत्रों को उसी प्रकृति की बिजली के अनुरूप बनाया जाता है इसीलिए उन पर हार्सपावर, वोल्टेज आदि के साथ 50 साइकिल्स भी लिखा रहता है। अस्तु शक्ति संचरण के साथ चक्र प्रक्रिया जुड़ी ही रहती है। वह चाहे स्थूल विद्युत शक्ति हो अथवा सूक्ष्म जैवीय विद्युत शक्ति।

नदी प्रवाह में कभी–कभी कहीं भँवर पड़ जाते हैं उनकी शक्ति अद्‌भुत होती है। उनमें फँसकर नौकाएं अपना संतुलन खो बैठती हैं और एक ही झटके में उल्टी डूबती दृष्टिगोचर होती है। सामान्य नदी प्रवाह की तुलना में इन भँवरों की प्रचण्डता सैकड़ो गुनी अधिक होती है। शरीरगत विद्युत प्रवाह को एक बहती हुई नदी के सदृश माना जा सकता है और उसमें जहां–तहां पाये जाने वाले चक्रों की भँवरों से तुलना की जा सकती है।

गर्मी की ऋतु में जब वायुमण्डल गरम हो जाता है तो जहाँ–तहाँ छोटे बड़े 'चक्रवात'–साइक्लोन उठने लगते हैं वे नदी के भँवरों की तरह ही गरम हवा के कारण आकाश में उड़ते हैं। उनकी शक्ति देखते ही बनती हैं। पेड़ों की छतो की, छप्परों को उखाड़ते–उछालते वे बवन्डर की तरह जिधर–तिधर भूत–बेताल की तरह नाचते फिरते हैं साधारण पवन प्रवाह की तुलना में इन टारनेडो (चक्रवातों) की शक्ति भी सैकड़ों गुनी अधिक होती है।

शरीर गत विद्युत प्रवाह की शक्ति का प्रवाह यों संतुलित ही रहता है पर कहीं–कहीं उसमें उग्रता एवं वक्रता भी देखी जाती है। हवा कभी–कभी बाँस आदि की झुरमटों से टकरा कर कई तरह की विचित्र आवाजें उत्पन्न करती है नदी का जल कई जगह ऊपर से नीचे गिरता है – चट्टानों से टकराता है तो वहां प्रवाह में व्यतिक्रम उछाल, गर्जन, तर्जन की भयंकरता दृष्टिगोचर होती है। शरीरगत सूक्ष्म चक्रों की विशेष स्थिति भी इसी प्रकार की है यों नाड़ी गुच्छकों – प्लेक्सस में भी विद्युत संचार और रक्त प्रवाह के गतिक्रम में कुछ विशेषता पायी जाती है। किंतु सूक्ष्म शरीर में तो वह व्यतिक्रम कहीं उग्र दिखायी पड़ता है। पवन प्रवाह पर नियंत्रण करने के लिए नावों पर पतवार बांधे जाते हैं, उनके सहारे नाव की दिशा और गति भी अभीष्ट फेर कर लिया जाता है पवनचक्की के पंखों को गति देकर आटा पीसने, जलकल चलाने आदि काम किये जाते हैं। जलप्रपात जहां ऊपर से नीचे गिरता है वहॉ उस प्रपात तीव्रता के वेग को बिजली बनाने जैसे कार्यो के लिए प्रयुक्त किया जाता है समुद्री ज्वार भाटों से भी बिजली बनाने का काम लिया जाता है। ठीक उसी प्रकार शरीर के विद्युत प्रवाह में जहां चक्र बनते हैं वहां उत्पन्न उग्रता को कितने ही आध्यात्म प्रयोजनों में काम लिया जाता है।

चक्र कितने हैं?इनकी संख्या निर्धारण करने में मनीषियों का मतभेद स्पष्ट है। विलय तंत्र में इडा और पिंगला की विद्युत गति से उत्पन्न उलझन गुच्छकों को चक्रों की संज्ञा दी गयी है और उनकी संख्या पांच बतायी गयी है। मेरूदण्ड में वे पांच की ही संख्या में है मस्तिष्क अग्र भाग में अवस्थित आज्ञा चक्र को भी उनमें सम्मिलित कर लेने पर वे छः हो जाते है और हठयोग की गणना के अनुसार छः की संख्या पूरी हो जाती हैं।

सातवाँ सहस्त्रार है इसे चक्रों की बिरादरी में जोड़ने न जोड़ने पर विवाद है सहस्त्रार नाभि है उसे इसी बिरादरी में सम्मिलित रखने के दोनों ही पक्षों के साथ तर्क है इसलिए जहां छः की गणना है वहां सात का भी उल्लेख बहुत स्थानों पर हुआ है।

बात इतने पर ही समाप्त नहीं हो जाती। चक्रों की संख्या सूक्ष्म शरीर में बहुत बड़ी है इन्हें 108 तक गिना गया है छोटे होने के कारण उन्हें उपव्यिका कहा गया है और जपने की माला में उतने ही दाने रखे जाने की परम्परा चली है इनमें से कितने ही लघु चक्र ऐसे हैं जिन्हें जागृत करने वालों ने प्रख्यात चक्रों से भी अधिक शक्तिशाली पाया है। चन्द्रमा की गणना गृहों

में नहीं उपगृहों में होती है फिर भी अपनी पृथ्वी के लिए पूर्ण समझे जाने वाले गृहों की उपयोगिता अधिक है।

तंत्र ग्रंथों में ऐसे चक्रों का वर्णन है जिनके नाम और स्थान षट्चक्रों से भिन्न हैं जहां उनकी संख्या पांच बतायी गयी है वहां पांच कोशों का नहीं वरन् भिन्न आकृति के प्रकृति के अतिरिक्त चक्रों का वर्णन है।

(1) त्रिकूट (2) श्रीहाट (3) गोल्लाट (4) औटपीढ (5) भ्रमर गुफा इनके नाम हैं इनकी व्याख्या पांच प्राण एवं पांच तत्वों की विशिष्ठ शक्तियों के रूप में की गई है। इनके स्थान एवं स्वरूप हठयोग में वर्णित षटचक्रों से भिन्न है।

इसी तरह कहीं–कहीं तंत्र ग्रंथों में उनकी संख्या छः से अधिक कही गयी है–

नवचक्रं कलाधारं त्रिलक्ष्यं व्योम् पंचकम्।
सम्यगेतन्न जानति स योगी नाम धारकः।।

– 'सिद्ध सिद्धांत पद्धति'

नवचक्र, त्रिलक्षं, सोलक आधार, पांच आकाश वाले सूक्ष्म शरीर को जो जानता है उसी को योग में सिद्धी मिलती है।

अष्टाचक्रा नवद्वारा देवानां पूरयोध्या।
तस्यां हिरण्मयः कोशः स्वर्गो ज्योतिषावृतः।।

– अथर्ववेद

आठ चक्र, नव द्वारा वाली यह अवोह या नगरी, स्वर्ण कोश और स्वर्गीय ज्योति से आवृत्त है।

शक्ति सम्मोहन तंत्र में उनकी संख्या 9 मानी गई है। कुण्डलिनी को 'नव चक्रत्मिका देवी' कहा गया है। नौ चक्र इस प्रकार गिनाये गये है। (1) आनंद चक्र (2) सिद्धि चक्र (3) आरोग्य चक्र (4) रक्षा चक्र (5) सर्वार्थ चक्र (6) सौभाग्य चक्र

(7) संशोक्षण चक्र (8) शाप चक्र (9) मोहन चक्र । यह नामकरण उनकी विशेषताओं के आधार पर किया गया है यह कहां, है, इसकी चर्चा में मात्र तीन को षट्चक्रों की तरह बताया गया है और शेष अन्यान्य स्थानों पर अवस्थित बताये गये हैं।

नौ के वर्णन में भी नाम और स्थानों की भिन्नता मिलती है। एक स्थान पर उनके नाम इस प्रकार गिनाये गये हैं। (1) ब्रम्हचक्र (2) स्वाधिष्ठान चक्र

(3) नाभि चक्र (4) हृदय चक्र (5) कण्ठ चक्र (6) तालुचक्र (7) भूचक्र (8) निर्वाण चक्र (9) आकाश चक्र बताये गये हैं। यह उल्लेख सिद्ध सिद्धांत पद्धति में विस्तारपूर्वक मिलता है।

संख्या जो भी मानी जाये उन सबका एक समन्वय शक्ति पुंज लोगोज (स्वहवे) भी है जिसका स्थूल सूर्य के समान ही किंतु अपने ढंग की रश्मियाँ निकलती हैं। सूर्य किरणों में सात रंग अथवा ऐसी विशेषताएँ होती हैं जिनका स्वरूप, विस्तार और कार्य क्षेत्र सीमित है। पर इस आत्मतत्व के सूर्य का प्रभाव और विस्तार बहुत व्यापक है। वह प्रकृति के प्रत्येक अणु को नियंत्रित एवं गतिशील रखता है। साथ ही चेतन संसार की विधि व्यवस्था को संभालता संजोता है। इसे पाश्चात्य तत्व वेत्ता सन्स आफ फोतह कहते हैं कि विश्व व्यापी शक्तियों का मानवीकरण इसी केंद्र संस्थान द्वारा हो सका है।

सामान्य शक्ति धाराओं में प्रधान गिनी जाने वाली (1) गति (2) शब्द (3) ऊष्मा (4) प्रकाश (5) संयोग (6) विद्युत (7) चुम्बक यह सात हैं। इन्हें सात चक्रों का प्रतीक ही मानना चाहिए।

कुण्डलिनी शक्ति को कई विज्ञान वेत्ता विद्युत द्रव्य पदार्थ या नाड़ी शक्ति कहते हैं।

इस निखिल विश्व ब्रम्हाण्ड में संख्याप्त परमात्मा की छः चेतन शक्तियों का अनुभव हमें होता है यों शक्ति पुंज परब्रम्ह की अगणित शक्ति धाराओं का पता पा सकना मनुष्य की सीमित बुद्धि के लिए असम्भव है। फिर भी हमारे दैनिक जीवन में जिनका प्रत्यक्ष सम्पर्क संयोग रहता है उनमें प्रमुख यह है (1) पराशक्ति (2) ज्ञान शक्ति (3) इच्छा शक्ति (4) क्रिया शक्ति (5) कुण्डलिनी शक्ति (6) मातृका शक्ति (7) गुहा शक्ति। इन सबकी सम्मिलित शक्ति पुंज ईश्वरीय प्रकाश अथवा सूक्ष्म प्रकाश कह सकते हैं। यह सातवी शक्ति है कोई चाहे तो इस शक्ति पूंज को उपर्युक्त छः शक्तियों का उद्गम भी कह सकता है इन सबको हम चैतन्य सत्ताएँ कह सकते हैं। उसे पवित्र अग्नि के रूप में भी कई जगह वर्णित किया गया है और कहा गया है उसमें से आग ऊष्मा तो नहीं पर प्रकाश किरणों निकलती हैं और वे शरीर में विद्यमान ग्रंथियों ग्लेण्ड्स केंद्रों और गुच्छकों को असाधारण रूप से प्रभावित करती है। इससे मात्र शरीर या मस्तिष्क को ही बल नहीं मिलता वरन् समग्र व्यक्तित्व की महान सम्भावना को और अग्रसर करती हैं।

इन सात चक्रों में अवस्थित सात उपर्युक्त शक्तियों का उल्लेा साधनाग्रंथों में अलंकारिक रूप में हुआ है। उन्हें सात लोक, सात समुद्र, सात द्वीप, सात पर्वत, सात ऋषि आदि नामों से चित्रित किया गया है। इस चित्रण में यह संकेत है कि इन चक्रों में किन–किन स्तर के विराट शक्ति स्त्रोतों के साथ संबंध है। बीज रूप में कौन महान सामर्थ्य इन चक्रों में विद्यमान है। और जागृत होने पर उन चक्र संस्थानों के माध्यम से मनुष्य का व्यक्तित्व छोटे से कितना विराट और विशाल हो सकता है। टोकरी भर बीज से लम्बा चौड़ा खेत हरा भरा हो सकता है। अपने बीज भंडार में सात टोकरी भरा–सात किस्म का अनाज सुरक्षित रखा है। चक्र एक प्रकार के शीत गोदाम – कोल्डस्टोर है और इन पर ताला जड़ा हुआ है। इन सात तालों की एक ही चाबी है उनका नाम है 'कुण्डलिनी'। जब उसके जागरण की साधना की जाती है तो यह ताले खुलते हैं बीज बाहर लाया जाता है। शरीर रूपी साढ़े तीन एकढ़ के खेत में वह बोया जाता है। यह छोटा खेत अपनी सुसम्पन्नता को अत्यधिक व्यापक बना देता है। पुराण कथा के अनुसार राजा बलि का राज्य तीनों लोकों में था। भगवान ने वामन रूप में उससे साढ़े तीन कदम भूमि में तीन लोक और आधे कदम में बलि का शरीर नाप कर विराट ब्रम्ह ने उस सबको अपना लिया। हमारा शरीर साढ़े तीन हाथ लम्बा है। चक्रों के जागरण में यदि उसे लघु से महान् – अण्ड से विभु कर लिया जाये तो उसकी साढ़े तीन हाथ की लम्बाई–साढ़े तीन एकड़ जमीन न रह कर लोक–लोकान्तरों तक विस्तृत हो सकती है और उस उपलब्धि की याचना करने के लिए भगवान् वामन रूप धारण करके हमारे दरवाजे पर हाथ पसारे हुए उपस्थिति हो सकते हैं।

अध्याय – 4
कुण्डलिनी एवं उसका जागरण :

चतुर्थ अध्याय में हठयोग की जिन प्रक्रियाओं का विवेचन किया गया है। उन सभी का उद्धेश्य प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष में राजयोग प्राप्ति ही है। किंतु यह राजयोग कैसे प्राप्त होता है? यह एक गूढ़तम रहस्य है। इसकी सूत्ररूप में चर्चा गत अध्याय में मुद्राओं के साथ की गयी है। वह रहस्य है कुण्डलिनी का जागरण और षट्चक्रों का भेदन। इस अध्याय में इसी रहस्य का उद्घाटन किया जाएगा। इस संदर्भ में सर्वप्रथम यह जानना आवश्यक है कि कुण्डलिनी क्या है?

कुंडलिनी जागरण की पूर्व तैयारी :

सोये हुए सांप को जगा देना सरल है। एक कंकड़ फेंक देने भर से वह फुंकार मारता हुआ फन फैलाकर पीछे दौड़ सकता है। दबी हुई चिन्गारी को प्रचण्ड कर देना सरल है। एक गठरी फूँस हाल देने पर या एक बोतल केरोसिन तेल उडेल देने भर से यह कार्य हो सकता है। बाघ की मांद पर जाकर ढोल बजा देना आसान है, पर जब यह दहाड़ता हुआ हमला करता है, तब उससे बचाव करना कठिन है। आग जब प्रचण्ड होकर पूरे गांव को जला देने के लिए उबल पड़े, तब उसका बुझाना और जिनका नुकसान हुआ है,उनका हर्जाना चुकाना कठिन है।

कुण्डलिनी जागरण के लिए जिन पूर्व साधनों की आवश्यकता है,उनके जुटाने में ही अधिकांश समय लगता है, अन्यथा क्रिया मात्र का सम्बन्ध रहा होता तो उसे बालू का महल बनाने की तरह कोई बालक भी कर गुजरता और सारे साथियों को बुलाकर अपनी कारीगरी का ढिंढोरा पीटता फिरता है। बिजली का बटन दबा देना सरल है, पर करेन्ट के चल पड़ने पर फिर उसकी चपेट में जो–जो आते हैं, उन्हे समेटना कठिन है। यह ठीक है कि सर्कस में शेरों को रस्से पर चलाने की क्रिया मनुष्य ही कराते हैं, पर उन मनुष्यों को

अपने जैसा साधारण नहीं माना जा सकता। कोई अनाड़ी उसी करतब को दिखाने के लिए मचल पड़े तो समझना चाहिए कि इसका बुरा दिन आ गया।

कुण्डलिनी जागरण, क्रिया कि दृष्टि से अति सरलहै। उसमें मूलाधार, मेरूदण्ड और सहस्त्रार के साथ थोड़ी छेड़खानी करनी पड़ती है। यदि वह बहुत हल्की या उथली हुई तो बात दूसरी है, अन्यथा यदि उसे तनिक सशक्तापूर्वक प्रयोग में लाया गया तो उसकी हलचल देखते ही बनती है। सांप की फुँसकार, हाथी की चिंघाड़, शेर की दहाड़ और आकाशीय बिजली की तड़कन से उसकी तुलना करनी पड़ती है। यों उनसे लाभ भी उठाया जा सकता है, पर पाशा पलट गया तो लेने के देने पड़ने में भी सन्देह नहीं।

सपेरे साँप को नचा कर ही अपना गुजारा करते हैं। रीछ वाले अपनी गृहस्थी का उसी के बलबूते निर्वाह करते हैं। हाथी पर सवारी, राजा सामंत करते हैं। शेर खरीदना लाखों रूपया खर्च करने वाले सर्कस मालिकों का काम है। इन कर्मो में सफलता प्राप्त करने वालों की प्रशंसा की जाती है, पर यदि चौकड़ी चूक गये तो जान गँवा बैठने के अतिरिक्त और कोई चारा नही। इसलिए डरा तो नहीं जाना चाहिए, पर प्रयोग की प्रवीणता और बचाव के साधनों की सुविधा समय रहते एकान्त में कर लेने में ही समझदारी है। कुण्डलिनी साधना के लिए कदम बढ़ाने वालों को अपने क्रिया तलवार की धार पर चलने से कम समर्थ, किन्तु जोखिम भरी नहीं समझनी चाहिए।

इस प्रयोग में जिन उपकरणों की आवश्यकता पड़ती है। उनकी गणना पहले कराई जा चुकी है। (1) संकल्प, (2) साहस, (3) प्राण, (4) संयम, (5) धैर्य, (6) तत्परता, (7) तन्मयता। इन सातों का संकलन कर लेना एक प्रकार से आत्म विजय करना है। जिसने अपने को जीत लिया उसके लिए अन्य किसी को भी जीत लेना सरल है।

श्रद्धा और विश्वास भरे निश्चय निर्धारण, कार्यान्वयन को संकल्प कहते हैं। जिसने किसी विषय की जिज्ञासा उभार कर पक्ष और विपक्ष का सही मन्थन नहीं कर लिया है,उसके लिए संकल्प कर सकना और निभा सकना कठिन है। बाल – कल्पनाएं और कौतुक कौतूहल देखने भर की ललक आम लोगों में होती है। उनके मनोरथ पानी के बुलबुले की तरह उठते, फूटते रहते हैं। गरम दूध उफन कर बर्तन से ऊपर निकलता है। एक चम्मच पानी डालते ही वह पेदे में भी बैठ जाता है। ऐसी मनः स्थिति वाले कोई बड़ा काम नहीं कर सकते। वे आज आरम्भ करते और कल छोड़ बैठते है। साधना पथ के

पथिकों को धैर्यवान होना चाहिए और विलम्ब लगने पर इतना ही सोचना चाहिए कि हथेली पर सरसों जमाना बाजीगर का काम है। हजार वर्ष जीवित रहने वाले वृक्ष उगने और प्रौढ़ होने में समय ले जाते हैं। उनकी सिंचाई और देखभाल देर तक करनी होती है।

साहस में आत्म–बल, आत्म–विश्वास और पराक्रम का सम्पुट रहता हैं कठिनाइयों के बिना सामना किये किसी बड़े काम में तत्काल सफलता नहीं मिलती। बालक जन्म लेने से पूर्व स्वयं काफी हैरान हो लेता है और माता को परेशान कर लेता है। सरल काम तो इस संसार में एक ही है मजाक और मनोरथ। बड़े पुल और बांध बनाने, बड़े कारखाने खड़े करने में कितने साधन सरजाम जुटाने और कितने जोखिम उठाने पड़ते हैं। इसका विवरण ऐसे कामों का दायित्व उठाने वाले भुक्तभोगियों से ही पूछा जा सकता है।

प्राण एक शक्ति है जिसे सजीव विद्युत कहा जाता है। इसका अभ्यास करने के लिए प्राणाकर्षण प्राणायाम करते रहना है। इसका विधान सीधा–सा है कि अखिल ब्रम्हाण्ड में चेतना का भण्डार भरा पड़ा है और हम उस समुद्र में मछली की तरह जी रहे हैं। वह हमारे भीतर ओत–प्रोत है और हर श्वास के साथ हम उसे अधिकाधिक मात्रा में भर रहे हैं। शक्ति पुन्ज, चेतना भण्डारगार जैसी हमारी स्थिति बन रही है। इसे कल्पना के रूप में नहीं वास्तविकता के रूप में मान्यता देनी चाहिए और अनुभव करना चाहिए कि हमारे कण–कण में रोम–रोम में सृष्टा का वरिष्ठ तेजस् – ब्रम्हा वर्चस्–संव्याप्त हो रहा है। इस क्रिया में प्राणायाम अभ्यास से बहुत सहायता मिलती है।

संयम उस तत्व का नाम है जो उत्तेजना, आवेशों आवेगों, प्रलोभनों, दबावों को अस्वीकार करता है और बहकाने वाले, फुसलाने वाले हर अनौचित्य को स्वीकारने से दो टूक इन्कार करता है।

आये दिन भीतर और बाहर से अवांछनीयताओं के उफान आते रहते हैं। कई बार तो वे अन्धड़ की तरह प्रचण्ड होते हैं। कामुकता और जीभ का चटोरापन तो अपने स्वभाव के अंग बने बैठे हाते हैं। लोभ और मोह की, संग्रह और प्रदर्शन की लालसा इतनी तीव्र होती है, जो कुकर्म और अपराध अपनाने तक के लिए उत्तेजना प्रदान करती है। मित्र, सहयोगी, पड़ौसी और सम्बन्धी भी यह करते हैं और प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में वैसा ही अनुगमन करने का परामर्श देते हैं। एक ओर भीतरी और बाहरी दबावों का आकर्षण, दूसरी और सादगी, सज्जनता अपनाने पर उपहास और विरोध का, तंगी और हैरानी का,

धैर्य तोड़ने वाला कुचक्र चलना। जो इस परिस्थिति से आये दिन जूझता रहता है, जूझने में प्रसन्नता अनुभव करता है उसे संयमी कहते हैं। उसे अपनी–अपनी निज की शक्ति–दुष्प्रवृत्तियों से जूझने में व्यय करनी पड़ती है। ''ना'' कहना, सीखना पड़ता है और किसी के भला या बुरा मानने का विचार करना पड़ता है। यह अभ्यास परिपक्व होते–होते उस संयम के रूप में बदलता है जो मनुष्य को सोने जैसा खरा और चट्टान जैसा मजबूत बना देता है।

तत्परता का अर्थ है लगन स्फूर्ति और श्रम–शीलता का समन्वय। जिस काम में हाथ डाला जाय उसे पूरा करना अपनी प्रतिष्ठा का प्रश्न बना लिया जाय। आलस्य प्रमाद को पास न फटकने दिया जाय। श्रम की कठोरता में अपना गौरव अनुभव किया जाय।

तन्मयता का अर्थ है – एकाग्रता। दत्त–चित्त होना। मन को भटकने न देना। जो सोचना या करना है, उसी के सम्बन्ध में इतनी गहराई तक उतरा जाय कि अन्य कोई विचार सामने आने ही न पाये। मस्तिष्क में टिक ही न सके। अर्जुन का मत्स्य वेध, पृथ्वीराज का शब्द–वेध इसका अच्छा उदाहरण है। कीट भृंग का सन्दर्भ भी इस सम्बन्ध में दिया जाता है। यह एकाग्रता भौतिक और आत्मिक सफलताओं के लिए समान रूप से आवश्यक है।

इस सप्त सम्पदाओं को अन्तराल में धारण करने पर कोई व्यक्ति सच्चा साधक बन जाता हैं। सातों ऋषि उसके भीतर निवास करते हैं और न उसकी साधना खण्डित होने देते हैं और न उपलब्धियों का दुरूपयोग करने पर उलटा परिणाम हस्तगत होने की विपरीत स्थिति बनने देते हैं। जिन्होंने इस दिशा में उपेक्षा बरती, अपने को पवित्र और प्रखर नहीं बनाया, वे मात्र क्रिया कृत्यों में उलझे रहते हैं और जादूगरी का अनुकरण करते हुए ऐसी आशा लगाये रहते हैं कि करामातें हस्तगत करके लोगों को मूर्ख बनाने,उनसे यश और धन प्राप्त करने में सफलता प्राप्त करेंगे। ऐसे लोगों को अपयश और अनिष्ट ही हाथ लगता है। नैतिक पतन के गर्त में गिरने से उनकी अन्तरात्मा भी दुर्बलहोती है और वस्तुस्थिति विदित होने पर प्रशंसक भी निन्दक, विरोधी बन जाते हैं।

कुण्डलिनी जागरण महत्वपूर्ण तो है, पर उसमें बारूद के खिलौनों से खेलने जैसा जोखिम भी है। दिवाली के दिनों में फुलझड़ी जलाने और पटाखे छुड़ाने में मजा तो बहुत आता है, पर कितनों की ही आँखें फूटती और

उँगलियाँ उड़ती भी देखी गई हैं। भूत–प्रेत सिद्धि से लेकर कुण्डलिनी जागरण तक की सिद्धियां ऐसी हैं जिसमें शरीरांतगर्त संस्थानों की ही उठक–पटक करनी पड़ती है। इन सबको करने से पूर्व अपने साधनों को सही बना लेना और सुरक्षा कवच से सुसज्जित हो जाना है। टूटी तलवार और फटीढाल लेकर लड़ाई के मैदान में उतर पड़ना, ऐसी जल्दबाजी है जिसका दुष्परिणाम पागल हो जाने जैसी विपत्तियों के रूप में सहन करना पड़ सकता है।

तीर कमान सही तो निशाना चिड़िया से लेकर शेर तक साधा जा सकता है, अभ्यस्त शिकारी कटार के सहारे सिंह, व्याघ्रों तक को परास्त करते देखे गये हैं। पूर्ण अभ्यास एवं अनुभव की भूमिका ऐसे अवसरों पर ही परखी जाती है। जो आतुरता में दूसरों की नकल करने में जुट पड़ते हैं, उनकी उतावली उन्हीं के लिए खतरनाक सिद्ध होती है।

इसकी तुलना में दूसरी साधनाएं भी है जो अपूर्ण रहने पर भी किसी प्रकार की हानि नहीं पहुंचाती। अधिक से अधिक इतना ही हो सकता है कि लाभ सीमित मात्रा में मिले–समय कुछ अधिक लगे। इसके अतिरिक्त किसी प्रकार के ऐसे जोखिम की आशा नहीं है जिसके लिए चुनाव की गलती पर पश्चाताप करना पड़े।

ज्ञानयोग, कर्मयोग, भक्तियोग की साधनाएं भी ऐसी हैं जिनके सहारे अध्यात्मवादी उपलब्धियों का समुचित लाभ मिल सकता है। हठयोग की सभी क्रियाएं ऐसी हैं जिसमें साधक की मनोभूमि और मार्ग दर्शक की अपरिपक्वता बनी रहने पर उस प्रकार के प्रसंगों में कोई नये व्यवधान उठ खड़े होने की सम्भावना रहती है। कुण्डलिनी, प्रयोग हठयोग के अन्तर्गत आता है। उसके लिए मात्र मनोभूमि का परिशोधन हीं नहीं, नाड़ी शोधन के लिए नेति, धौति, वस्ती, कपाल भांति, बज्रोली आदि की भी तैयारी करनी पड़ती है। उसमें अशुद्धता भरी रहने पर अवरूद्ध नली वाली बन्दूक के न चल सकने की तरह असफलता का एक नंया कारण बनता है। कुण्डलिनी जागरण की विधि :

इस शक्ति को जगाने के लिए सिद्धासन में प्राणायाम से प्राण अपत के संयुक्त करने हेतु कुम्भरू करते हैं, जिससे सुषुम्ना मार्ग निर्मल हो जाता है। और उसमें प्रवेश हेतु कुण्डलिनी शक्ति जागृत हो जाती है। मुद्राओं1 के अभ्यास से यह शक्ति सुषुम्ना में प्रकट हो षट्चक्रो को भेद कर तथा तीनों

ग्रंथियों को पार कर सहस्रार अर्थात शिव से साक्षात्कार करती है3 साधक के योगाभ्यास का यही परम लक्ष्य है। यह लक्ष्य कुण्डलिनी के सुषुम्ना नाड़ी में प्रविष्ट होने से प्राप्त होता है। यह सुषुम्ना कहां पर है?तथा इसके अलावा कितनी और नाड़ियां हैं? अब इन प्रश्नों के संदर्भ में विवेचन करेंगे।

कुण्डलिनी की प्रसुप्तावस्था :

जब कुण्डलिनी सोई रहती है तब मनुष्य पशुवत रहता है धेरण्ड संहिता में इस अवस्था का वर्णन इस प्रकार होता है कि, ''जब तक वह (कुण्डलिनी) देह में सोती रहती है, तब तक जीव पशु की तरह अज्ञान में अंधा रहता है। सत्य और असत्य कुछ भी नहीं जान पड़ता भले ही कोटि प्रकाश से योगाभ्यास करें किंतु कभी सत्य ज्ञान को नहीं जान सकता।'' यही वर्णन अन्यत्र भी प्राप्त होता है।

कुण्डलिनी की जाग्रतावस्था :

कुण्डलिनी शक्ति के जाग्रत होने पर साधक संसार के प्रति उदासीन हो जाता है तथा वह सर्वोच्च स्थिर चेतना से संयुक्त हो जाता है जिसे शिव कहते हैं। ऐसा शारदातिलक के 65 पैसठवें सूत्र में स्पष्ट कहा है। धेरण्ड संहिता कुण्डलिनी कें जागरण पर ब्रम्हद्वार के प्रभेद की बात कहती है। शिव संहिता में सर्वपद्य भेद की स्थिति भी कुण्डलिनी जागरण से संभव बतलायी है।

1. हठयोग प्रदीपिका – 3/5
2. हठयोग प्रदीपिका – 3/2
3. धेरण्ड संहिता – 3/51कुण्डलिनी का स्वरूप :

जैविक देह में कुण्डलिनी 31/2 गेंडुली वाली मानी गयी है। ''वह विद्युत किरण की भांति तन्वी है, वह ऊष्मा अग्नि से युक्त है, बिजली की आभा के समान उसकी किरणें है और विद्युत की भांति ही प्रकाशमान किरणों वाली है।'' तोडल तंत्र में कहा गया है कि – यावत्सा निद्रिता देहे तावज्जीवं पशुर्यथा।

ज्ञान न जायते तावत् कोटियोगं समभ्यसेत्

'' कुण्डलिनी साढ़े तीन कुण्डल से युक्त लिंग छिद्र को अपने मुख कुण्डल में ढंककर स्थित है।''1 यह कुण्डलिनी सुषुम्ना के मुख छिद्र को बंद कर सोती है। अर्थात उसके सुषुप्त रहने से व्यक्ति का आध्यात्मिक विकास अवरूद्ध रहता है। तथा जागने पर आध्यात्मिक विकास का उदय होता है।

1. धेरण्ड संहिता – 3/45 एवं षट्चक्र निरूपणम् – 10

नाड़ियों का स्वरूप व नाड़ियो की संख्या :

नाड़ियां इतनी सूक्ष्म हैं कि बाल के हजार बार चीरने से जो सूक्ष्य बाल प्राप्त होगा उसके बराबर हैं तथा ऐसे रसायन से भरी हैं जो श्वेत, नीला, पीला, हरा और लाल है।1 ये संपूर्ण नाड़ियां सारी देह में व्याप्त हैं। इन्हीं नाड़ियों से संपूर्ण शारीरिक क्रियाएं सम्पन्न होती हैं। नाड़ियों के माध्यम से शरीर के प्रत्येक अंग में प्राण वायु का संचार होता है। यह प्राणवायु सूर्य व चंद्र से प्रभावित होती रहती है।

नाड़ियों का स्वरूप अत्यंत सूक्ष्म है अतः इन्हें किसी चिकित्सीय यंत्र से प्राप्त करना संभव नहीं है। इसका यह अर्थ कदापि नहीं, कि उनका अस्तित्व है ही नहीं विदुषी इंदिरा देवी कहती हैं2 कि जिस तरह प्रेम, घृणा, अच्छाई, लालच को भौतिक रूप में नहीं जाना जा सकता उसी तरह इन नाड़ियों के अस्तित्व ज्ञान हेतु भौतिक यंत्र अपर्याप्त हैं। उनका यह कथन सटीक है। वास्तव में नाड़ियों की संख्या अनंत है। प्रत्येक रोम कूप के साथ नाड़ियों का संबंध रहता है।3 ऐसा मत कविराज गोपीनाथ व्यक्त करते हैं।

1. स्वामी कुवल्यानंद – गोरक्षशतकम् – पृष्ठ 61 पर वृहद्रउपनिषद् – प्ट/3/20 का उद्धरण।
2. इंदिरा देवी – योग – अध्याय – 11
3. कविराज गोपीनाथ – तांत्रिका वांग्मय में शाक्त दृष्टि – अध्याय देह विज्ञान – पृ. 109–110

मनुष्य के शरीर में दो प्रकार की नाड़ियां होती है। तरल पदार्थ को बाने वाली, जैसे रक्त, लसीका आदि, और वायु को बहाने वाली। उपनिषदों के समय से ऐसी कल्पना की जाती रही है कि आत्मा या जीव का संचार नाड़ियों में से होता हैं मुण्डकोपनिषद्1 में इस संबंध में इस प्रकार स्पष्ट उल्लेख पाया जाता है कि रथचक्र की नाभि में जैसे अरे लगे होते हैं उसी प्रकार हृदय में नाड़ियां एकत्र होती हैं। उनमें आत्मा का संचार होता है।'' इसी प्रकार का आत्मा के नाड़ियों में हरने का उल्लेख छान्दोग्योपनिषद्2 है।'' इसी प्रकार का आत्मा का नाड़ियों में रहने का उल्लेख छान्दोग्योपनिशद2 में भी आया है। कि ''सुषुप्ति अवस्था में आत्मा नाड़ियों में स्थिर है।'' मृत्यु के समय इन नाड़ियों में से किसी विशेष नाड़ी में से आत्मा को बाहर निकालने से अमरत्व की प्राप्ति होती है इसका उल्लेख कठोपनिषद3 में आया है हृदय से निकलने वाली एक सौ एक नाड़ियों में से जो एक ऊपर मस्तक

की ओर जाती है उससे प्राण बाहर निकालने से अमरत्व की प्राप्ति होती है। अन्य नाड़ियों में से प्राणोत्क्रमण होने पर पुनः जन्म मिलता है। इन सभी उल्लेखों में नाड़ियों से मतलब नाड़ी संस्थान के अंर्तगत आने वाली नाड़ियों से अर्थात अंग्रेजी में जिन्हें नर्व्ह कहते हैं से है। इनके अलावा रक्त, लसीका, आदि तरह पदार्थ जिनमें से बहते हैं उनको भी नाड़ी शब्द से ही कहा है। वे नाड़ियां विभिन्न रंगों की होती, ऐसा उल्लेख छान्दोग्योपनिषद4 में आया है, "कि हृदय की ये नाड़ियाँ सूक्ष्म रस से भरी होती हैं तथा शुक्ल, नील पीत, लाल आदि रंगों की होती हैं।

ये सभी हृदय की नाड़ियों का उल्लेख हुआ। इसके अलावा योग में दूसरे एक स्थान से निकलने वाली नाड़ियों का वर्णन मिलता है। शिव संहिता5 में कहा है कि, "ये नाड़ियां रीढ़ की हड्डी के आश्रय से रहती हैं वे पद्मतंतु के समान कोमल होती हैं। उनको भोग वहा नाड़ियां कहते हैं वे वायु का वहन करती हैं।"

1. अरा इव रथनाओं संहता यत्र नाडयः।
स एषोडन्तश्चर ते बहुथा जायमानः।।
2. तद्यत्रैतत्सुप्तः समस्तः संप्रसन्नः (मुण्डकोपनिषद – 2:2:6)
स्वप्नं न।
विजानात्यासु तदा नाड़ीषु सत्वो भवति। छान्दोग्योपनिषद – 8:6:3
3. शतं चैका च हृदयस्य नाडयस्तासां मूर्धानमभिनिः सवैका।
तयोर्ध्वभायन्न मृतत्वमेति विश्वं अन्या उत्क्रमणे भवन्ति।।
कठोपनिषद् 2:3:16
4. अथ या एता हृदयस्य नाडयस्यताः पिंगलास्याणि –
मनस्थिष्ठन्ति शुक्लस्य नीलस्य पीतस्य, लोहितस्य।।
छान्दोग्योपनिषद् 8:6:1
5. नाडयस्तु ता अधोवदनाः पदमत–तुनिभाः स्थिताः।
पृष्ठवंश समाश्रित्य सोम सूर्याग्निरूपणी।।
एता भोगवहा नाडयो वायुस–चारदक्षकाः।
ओत प्रोताभिसंव्याप्य तिष्ठन्त्यस्मिन् कलेवरे।।
शिवसंहिता 2/17, 32

हठयौगिक ग्रंथों में इनका विस्तार से वर्णन प्राप्त होता है। कहीं कहीं उन्हें शिरा शब्द से भी कहा गया है। ये नाड़िया कंद से निकलती हैं। उनको त्रिशिख ब्राहम्णोपनिषद् में "कंद संभवा" शब्द से कहा है।6 अगले मंत्र

पचहत्तर में इनकी शरीर में संख्या कुल बहत्तर हजार बतलायी है। हठयोग प्रदीपिका7 इससे सहमत है। इनमें से प्रमुख दस नाड़ियों के नाम स्थान सहित त्रिशिख ब्राम्हमणोपनिषद8 में इस प्रकार बतलाये हैं –

(1) सुषुम्ना कंद के मध्य में स्थित है। तथा मस्तिष्क के ऊपरी भाग में ब्रम्हरंध्र तक जाती है। (2) इड़ा सुषुम्ना की बायी ओर होती है और बांयी नासिका में जाती है। (3) पिंगला सुषुम्ना की दाहिनी ओर से दाहिनी नासिका में जाती है। (4) गांधारी सुषुम्ना के सामने, आगे से बांयी भाग में जाती है। (5) हस्तिजिह्बा – सुषुम्ना के पीछे से दाहिनी आंख में जाती है। (6) पूषा – वायें कान में जाती है। (7) यशस्विनी – दाहिने कान में जाती है। (8) अलंबुसा – गूदा तक जाती है। (9) शभा – जननेन्द्रिय तक जाती है। (10) कौशिकी – कंद से लेकर पैर के अंगूठे तक जाती है। तंत्र9 में 3 लाख और शिव संहिता10 में 31/2 लाख नाड़ियां कहीं गयी हैं। किंतु योग याज्ञवलक्यतथा शिव संहिता में चौदह प्रमुख नाड़ियों का वर्णन मिलता है। उनके नाम इस प्रकार है – (1) सुषुम्ना (2) इड़ा (3) पिंगला (4) सरस्वती (5) कुहू (6) गांधारी (7) हस्तिजिह्वा (8) विश्वोदरा (9) वारूणी (10) पूसा (11) यशस्विनी (12) शखिनी (13) पयस्विनी तथा (14) अलंबुषा।

6. त्रिशिख ब्राम्हमणोपनिषद् – 74
7. हठयोग प्रदीपिका – 3/123
8. त्रिशिख ब्राम्हणोपनिषद् – 68 से 74
9. डां. शांति प्रकाश आत्रेय – योगमनो विज्ञान – पृ. 347
10. शिव संहिता – 2/13

इनके स्थान पूर्वोक्त स्थानों से कुछ भिन्न तथा कुछ समान हैं। इड़ा, पिगंला, सुषुम्ना, गांधारी और अलंबुसा इन पांच नाड़ियों के स्थान दोनों सूचियों में समान हैं शुभा और कौशिकी में दो नाड़ियां केवल प्रथम सूची में हैं, दूसरी सूची में नहीं। परंतु उनमें से शुभा के स्थान पर द्वितीय सूची में कुहू नाड़ी जननेंद्रिय तक जाती है। कौशिकी नाड़ी के स्थान पर पैर के अंगूठों में जाने वाली दो नाड़ियां द्वितीय सूची में हैं। हस्ति जिहवा और यशस्विनी, बांये और दाहिने अंगूठे में। प्रथम सूची में हस्ति जिह्वा दाहिनी आंख में जाने वाली किसी बड़ी नाड़ी का नाम नहीं है। प्रथम सूची में यशस्विनी दाहिने कान में जाती है। द्वितीय सूची में दाहिने कान में जाने वाली नाड़ी का नाम यश्विनी दिया है। सरस्वती, शांखिनी, विश्वोदय तथा वारूणी ये चार नाम प्रथम सूची में नहीं है केवल द्वितीय सूची में हैं। सरस्वती जिह्वा तक, शंखिनी दाहिने कान के ऊपर के हिस्से में, विश्वोदरा उदर के मध्य मे तथा वारूणी कुण्डलिनी

के ऊपर और नीचे सर्वत्र जाती है। नाड़ियों के अर्थात नर्व्हस सिस्टम के अर्न्तगत आने वाले आधुनिक वैज्ञानिक जानकारी के साथ ऊपर लिखे नाड़ियों के वर्णन से कोई मेल नहीं खाता। यह विशेष बात है।

इन दस या चौदह नाड़ियों में तीन नाड़ियां सभी ग्रंथों में अधिक महत्व की कही गयी हैं। वे है इड़ा, पिंगला तथा सुषुम्ना। इन तीनों में सुषुम्ना नाड़ी को सभी से सर्वोच्च स्थान दिया है। सुषुम्ना नाड़ी जब तक मल से व्याप्त है तब तक वह अज्ञान में भरा रहता है। प्राणायाम के अभ्यास से सुषुम्ना नाड़ी मल रहित हो जाती है। तब कुण्डलिनी शक्ति, जो कंद में हमेशा सोई हुई रहती है, वह जागृत होकर सुषुम्ना के मध्य मार्ग से ऊपर जाकर मस्तिष्क में स्थित परम शिव के स्थान तक पहुंचती है। तब साधक को सहज समाधि, जीवन्मुक्ति या उन्मनी अवस्था प्राप्त हो जाती है इड़ा को वाभ नाड़ी या चंद्र नाड़ी तथा पिगंला को दक्षिण नाड़ी या सूर्यनाड़ी कहते हैं। उनके मध्य में स्थित सुषुम्ना को ब्रम्हनाड़ी या ब्रम्हद्वार कहते हैं।

सुषुम्ना नाड़ी सहित अन्य नाड़िया वायुद्वार शुद्ध हो जाती है। अर्थात नाड़ी शुद्धि में वायु का बड़ा महत्व है इसके देह में प्रतिष्ठित रहने पर जीवन रहता है तथा इसके देह से निकल जाने पर मृत्यु हो जाती है। ऐसा होने के कारण इसे प्राण की संज्ञा में विभूषित किया गया। यह तथ्य हम प्राणायाम शीर्षक के अर्न्तगत स्पष्ट कर चुके हैं। कि वायु को ही प्राण कहते हैं। अब हम यह देखने का प्रयास करेगें कि वायु कितने हैं?तथा विभिन्न शास्त्र इस संबंध में क्या कहते हैं?

कुण्डलिनी जागरण, नादानुसंधान, समाधि और केवल्य की प्राप्ति :

साधक जब आसन, प्राणायाम, बंध मुद्राओं का अभ्यास निरंतर करता रहता है तब कुण्डलिनी जागकर क्रमशः मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपुर, चक्र का ज्योंही भेदन कर अनाहत चक्र का भेदन करती है त्यों ही नादानुसंधान का अभ्यास कर रहे साधक की आरम्भावस्था आती है। नादानुसंधान की अवस्थाओं का वर्णन हम पहले कर चुके हैं। नादानुसंधान से मन नाद के साथ आत्मा में लीन हो जाता है। इससे राजयोग का परम पद और उन्मती अवस्था की प्राप्ति शीघ्र हो जाती है। इसे कैवल्य प्राप्ति भी कहा जाता है। हठयोग की संपूर्ण प्रक्रियाओं का यही लक्ष्य है और कुण्डलिनी जागरण उसका मुख्य साधन है।

अध्याय – 5
कुण्डलिनी साधना क्यों किस प्रयोजन के लिए :

इन दिनों विश्वव्यापी विनाश संकट के घटाटोप इस तरह घिरते जा रहे हैं जिससे मानवी सत्ता और सृष्टि के लिए अस्तित्व रक्षा का संकट उत्पन्न हो गया है। यह जितने विकट हैं, उतने ही समर्थ उनके प्रतिरोधक उपकरण चाहिए। हाथी छोटी पिस्तौल से नहीं मरता। किला बिस्मार करने के लिए बाण वर्षा से नहीं, तोपें दागने से काम चलता हैं वृत्रासुर का निधन बज्र बन जाने पर हुआ था। महिषासुर के लिए चण्डी का आवेश भरा आक्रोश कार्यान्वित हुआ था। पर्वत उखाड़ने के लिए हनुमान का पौरूष काम आया था। पहाड़ उड़ाने के लिए डायनामाइट की छड़ें ही काम आती हैं। स्थिति को देखते हुए यह आवश्यक प्रतीत हुआ कि रचनात्मक सामर्थ्य की ही नहीं संघर्ष के लिए काम आने वाले ब्रम्हास्त्र जैसे साधनों की भी आवश्यकता पड़ेगी।

संकटों का दानवी समुदाय एकत्रित होकर संचित सभ्यता का विनाश जिस प्रकार करने पर तुला है, उन्हें यदि मनमानी करने दी जाय तो प्रलय के दृश्य प्रस्तुत हो सकते हैं। इनकी रोकथाम आवश्यक है। उन्हें उल्टा और निरस्त किया जाना चाहिए। इसके लिए दूसरी तरह के हथियार चाहिए। ग्रन्थलेखन में कागज कलम, दवात काम दे जाती हैं। रसोई बनाने में आटा, दाल और ईंधन का होना पर्याप्त है। पर जब दुर्दान्त वस्तुओं का सामूहिम आक्रमण हो और लूट रक्तपात की विभीषका सामने आ खड़ी हो तो उन्हें रोकने के लिए बारूदी हथगोलों की आवश्यकता पड़ेगी।

हमारा जीवन गायत्रीमय ही बीता है। जो समय शेष रहा है,वह भी उसी में लग–खप जाय तो ठीक है। आज की विभीषिकाओं से जूझने में संघर्ष प्रयोजन के लिए कोई चन्द्रगुप्त, शिवाजी, विवेकानन्द मिल जाता तो हमें

निर्धारित पथ से हटकर दायें–बायें न देखना पड़ता। पर बहुत प्रयत्न करने पर भी वैसा सुयोग न बन सका। फिर भी हम अभी निराश नहीं हैं। अध्यात्मक शक्तियां संसार में हैं तो सही पर वे सभी सूक्ष्म शरीर में रह रही हैं। भौतिक प्रयत्नों के लिए स्थूल शरीरधारी चाहिए। महाभारत में पांच देवताओं ने पांच पाण्डवो के रूप में शरीर धारण किए थे। कुछ रीछ–वानरों के रूप में, कुछ हनुमान अंगद आदि बनकर प्रकट हुए। प्रत्यक्ष कामों के लिये प्रत्यक्ष शरीर चाहिए। यह ढूँढ तलाश करने में लम्बा समय व्यतीत हो गया। शक्ति का समुच्चय न हो तो उसका थोड़ा अंश ही सही। वह किसी देवमानव में हो तो कामचलाऊ व्यवस्था बन सकती है। हमें बीजरूप में शक्ति संजोए ऋषि सताएं प्रज्ञा परिवार के रूप में हाथ लगी हैं। पर वे एकाकी तो निस्सार ही थीं। यदि उन्हें दिशा न दी गयी होती तो वही शक्तिकहीं ध्वंसपरक गतिविधियों में लगी होती। ऐसे में मार्गदर्शन के निर्देशानुसार एक ही उपाय शेष रहा कि बड़ी मात्रा में शक्ति उपार्जन एवं तदुउरान्त वितरण हेतु स्वयं ही आगे आया जाय और मार्ग बदलना है तो स्थिति के अनुरूप वह भी बदल लिया जाय।

सन् 1984 में वह परिवर्तन किया गया। एकान्त साधना–सावित्री साधना का अवलम्बन लिया गया। मुखर और मिलनसार जीवन छोड़कर एकान्तवास की रीति–नीति अपनाना सरल कार्य नहीं था। सावित्री साधना–पंच कोशों के जागरण की, कुण्डलिनी जागरण की साधना है। इसी को सूक्ष्मीकरण एवं वेदान्त की पंचीकरण साधना नाम दिया गया है। जिस मार्ग–दर्शक ने गायत्री साधना में हमें प्रवृत किया, उसी ने सावित्री साधना का विधान बताया ताकि हमारे माध्यम से अन्य अनेक प्रसुप्त देवमानवों का शक्ति जागरण हो, वे वास्तविक स्वरूप को पहचानें और आत्मिक प्रगति के माध्यम से समष्टिगत हित साधन कर सकें।

देखा गया कि संकट उतना हल्का नहीं है जिसे सौम्य प्रयासों से निपटा जाय। यह बायें हाथ से खेलने वाला खेल न प्रतीत हुआ इसलिए दाहिने हाथ को साधना और सम्भालना पड़ा है। सावित्री साधना से एक कदम आगे बढ़कर कुण्डलिनी को आड़े वक्त में जगाना पड़ा। इसी को दूसरे शब्दों में महाकाली महाचण्डी या महादुर्गा कहा जाता है। यह आवश्यक जान पड़ा कि जिस शक्ति का सुनियोजन जिन व्यक्तियों द्वारा किया जाना है, उन्हें इस विद्या की समुचित जानकारी दी जाय। पिछले दिनों कुण्डलिनी विज्ञान

का काफी अन्वेषण, पर्यवेक्षण, प्रयोग–परीक्षण, अध्ययन–अवगाहन चलता रहा है। इस सन्दर्भ में नई पुरानी पुस्तकों में चित्र–विचित्र प्रकार के उल्लेख मिलते हैं। इन्हीं को जोड़–गांठ कर नए लेखकों और प्रकाशकों ने भी कुछ लिखने छापने का प्रयत्न किया है। इस लीपापोती के प्रयास में और भी अधिक गुड़ गोबर हो गया है।

अब तक कुण्डलिनी विषय पर लिखे गए प्रतिपादनों को पढ़कर एक ही निष्कर्ष निकलता है कि यह विषय आकर्षक एवं गृह्य विज्ञान से सम्बधित होने के कारण अनेकों ने इस पर कार्य किया हैं। पर निज का प्रयोग या अनुभव सम्पादन करने का कष्ट किसी ने भी नहीं किया। जो भी कुछ उन्होंने लिखा है,वह हठयोग के प्रारम्भिक प्रयोग एवं उनकी प्रतिक्रिया मात्र है जो कि इस विधा का एक प्रतिशत भी नहीं है। प्रयोगकर्ता यह दावा करने से भी चतुरतापूर्वक बचते रहें है कि उन्होंने अपना प्रयोजन पूरा कर लिया। आज कहीं प्रामाणिक पुस्तक–मार्गदर्शन तो दूर उसके सिद्धान्त विवेचन का सही रूप प्रस्तुत करने वाली पोथी भी कहीं दीख नहीं पड़ती। हमने स्वयं को भ्रम जंजालों से बचाकर उन्ही प्रतिपादनों को आगे बढ़ाने का एक विनम्र प्रयास किया है।

हमारी सूक्ष्म मार्ग–दर्शक सत्ता जो शताब्दियों से मौजूद है, गायत्री, सावित्री और कुण्डलिनी क्षेत्र में समान ज्ञान व अनुभव रखती है। उसी ने हमें परखा हुआ सिक्का समझकर विगत तीन वर्षों में सावित्री साधना तथा फिर देवात्मा भारत की कुण्डलिनी जागरण के अभ्यास हेतु नियोजित किया है ताकि एक लुप्तप्राय किन्तु अत्यन्त सशक्त विद्या का सर्वथा लोप न होने पाए। उसकी टूटी हुई कड़ियां जुड़ कर अपने समग्र रूप में बनी रह सकें।

गायत्री ब्रम्ह विद्या है। उसे आत्मिकी भी कह सकते हैं। सावित्री आत्म भौतिकी है। आती तो वह आत्म–विज्ञान के अन्तर्गत ही है, पर उससे भौतिक लाभों का उपार्जन और सांसारिक संकटों का निवारण ही हो सकता है। दोनों ही के माध्यम से अपना या अपनों का हित साधन हो सकता है, किन्तु कुण्डलिनी की क्षमता ब्रहमाण्डव्यापी है और उसे विशेषतया तोड़ने या टूटे को जोड़ने में कार्यान्वित किया जाता है। चण्डी का क्रुद्ध–रूष्ट रूप उमड़ पड़े तो उसे अनाचार की मरम्मत करने के लिए प्रयुक्त किया जा सकता है। उसे इसी कारण असुरनिकन्दिनी कहा गया है। उसका जब भी प्रयोग हुआ है, दानवों–आसुरी शक्तियों के विनाश हेतु ही हुआ है। इसे तलवार की तरह

मारक होना चाहिए, जिसे तोड़ने मारने के लिए ही काम में लाया जा सकता है। जो बेकाबू हैं। उन्हें बलपूर्वक खींच बुलाने के लिए, जिस दिशा में चाहें, उसे घसीटकर ले चलने के लिए यह प्रयुक्त की जा सकती है। यह वशीकरण विज्ञान है। इसे मारण और उच्चाटन प्रधान कह सकते हैं। भस्मासुर को, सुन्द–उपसुन्द को, महिषासुर को इस महाकाली ने ही अपनी शक्ति से वशीभूत कर नष्ट किया था। शुम्भ–निशुम्भ, दुर्दान्त असुर मधुकैटभ का मर्दन उसी ने किया था। राम एवं सीता के माध्यम से रावण का एवं श्रीकृष्ण–बलराम के माध्यम से पूतना, कंस, जरासंध जैसी आसुरी शक्तियों का नाश उसी ने किया था। यह तो शक्ति का एक पक्ष हुआ।

यही शक्ति जब सृजनात्मक प्रयोजनों हेतु प्रयुक्त होती है तो सृष्टि संचालिनी शक्ति बन जाती है। ज्ञानार्णव तंत्र में कहा गया है –''शक्तिः कुण्डलिनी विश्वजननी व्यापार वद्धोद्यता''। सारा विश्व व्यापार इसी शक्ति के माध्यम से एक घुमावदार उपक्रम की तरह चलता है। महाकाल की परिवर्तन प्रक्रिया इसी के माध्यम से सम्पन्न होती है। जीव को चक्र पर आरूढ़ मृतिका पिण्ड की तरह यह घुमाती है और कुम्हार की तरह आत्मसत्ता को भिन्न–भिन्न रूपों में गढ़ देती है। वस्तुतः कुण्डलिनी सृष्टि सन्दर्भ में समष्टि एवं जीव सन्दर्भ में व्यष्टि में शक्ति संचार करती है। कुण्डलिनी एक प्रकार से ''कॉस्मिक इलैक्ट्रिसिटी'' है, जो योगाग्नि को जगाती, व्यक्ति को प्राणवान–समर्थ–दृष्टा स्तर का बनाती है। कठोपनिषद् के यम–नचिकेता संवाद में पंचाग्नि विद्या के रूप में इसी प्राणाग्नि की चर्चा हुई है जो व्यक्ति को रोग जरा एवं मृत्यु से परे जीवन्मुक्ति की ओर ले जाती है। नाड़ी संस्थान की उत्तेजना से जो शक्ति उत्पन्न होती है, वह सामयिक एवं क्षणिक प्रभाव का ही परिचय दे पाती है। किन्तु कुण्डलिनी चिरस्थायी है, चेतनात्मक शक्ति है जो व्यक्ति में ऊर्जा समाहित कर उसके व्यक्तित्व का कायाकल्प कर देती है।

जहां कॉस्मिक स्तर पर, समष्टिगत धरातल पर कुण्डलिनी जागरण की प्रक्रिया चल रही हो, वहां यह मानना चाहिए कि यह अनिष्ट के निवारण एवं उज्जवल भविष्य के सृजन का प्रयोजन पूरा करेगी। पर ऐसे खतरनाक प्रयोग के लिए सत्पात्र तो हों। बन्दूक जब चलती है तो उसका झटका पीछे की ओर लगता है। इस महाशक्ति का प्रयोग करने वाले में इतना साहस, बल और शौर्य–पराक्रम होना चाहिए कि प्रहार के समय उलटकर पीछे लगने वाले

झटके को सहन कर सके। अन्यथा लाभ उठाने के लिये किया गया प्रयोग हानिकारक भी हो सकता है। फिर रहस्यमयी साधनाओं को चर्चा का विषय बनाने से वह सर्व साधारण के लिए चर्चा का विषय बनती हैं। यही कारण है कि इन्हें गुहय विद्या मानकर इन पर बहुधा पर्दा ही डाला जाता रहा है। जब तर्क–कुतर्कों का सिलसिला चलता है। अहंकारी लोग अपनी मीन–मेंख निकालते, गल्तियां और सुधार सुझाते हैं। ऐसी दशा में साधना का मूलभूत आधार श्रद्धा ही डगमगाने लगती है और शंकित मनःस्थिति में उत्तम से उत्तम साधन भी निष्फल बनकर रह जाती हैं। संभवतः ऐसे ही अनेक कारणों को ध्यान में रखते हुए शास्त्रकारों ने उच्चस्तरीय साधनाओं को विशेष कर तंत्र से जुड़ी साधनाओं का चर्चा का विषय बनाने का निषेध किया है। इस सन्दर्भ में मार्ग दर्शक द्वारा साधक की पात्रता को परखकर तद्नुसार साधन बताना आवश्यक समझा गया है। साधना क्षेत्र में पात्रता ही नहीं, साधक की आवश्यकता और परिस्थिति भी जांचनी पड़ती है। इसके बाद ही निदान के आधार पर उपचार का तरीका रोगी व चिकित्सक दोनों के लिए लाभदयक सिद्ध होता है।

सावित्री एवं कुण्डलिनी की साधना कराने का अनुभव एवं अभ्यास कष्ट साध्य एवं तलवार की धार पर चलने के समान दुरूह होने के कारण अब लोगों ने एक प्रकार से छोड़ ही रखा है। बिना अनुभवी शिक्षक के कोई इंजीनियर कलाकार नहीं बन सकता। इसी प्रकार जब कुण्डलिनी साधना के प्रवीण पारंगत ही नहीं रहे तो शिक्षार्थी कहां से मिले ?

कुण्डलिनी जागरण शरीरगत प्राणाग्नि का प्रज्वलन है और उसका लाभ निजी प्रयोजनों के लिए उठाने की परम्परा अब तक रहीं है। जननेन्द्रिय मूल की काम ऊर्जा को ब्रम्हरंध्र की ब्रम्ह ऊर्जा में मेंरूदण्ड मार्ग में अवस्थित छः चक्रों का वेधन करते हुए मिलाया जाता है। इससे शिव शक्ति का संयोग–सम्मिलन होने पर सिद्धियां भी मिलती हैं, पर उसमें सर्पो को खिलाने जैसी सतर्कता से काम लेना पड़ता है। सांप का तमाशा दिखाने वाला संपेरा उससे अपनी कुटुम्ब तो पालता है, लोगों पर अपनी प्रवीणता की छाप भी डालता है, पर साथ ही वह जोखिम से भी खेलता है। किसी विषधर से पाला पड़े तो उसकी फुसकार भर से खेल रूक जाता है, लोगों के कलेजे थम जाते हैं व जान जाने का डर रहता है।

शिव और शक्ति दोनों के गले में सर्प लिपटे हुए हैं। अलंकारिक रूप

से इसी को सर्पणी कुण्डलिनी कहा गया है। यह हठयोग का तांत्रिक प्रयोग तो है ही। छः चक्रों के वेधन से जो शक्तियां प्राप्त होती हैं वे न केवल प्रतिकूलताओं के निवारण हेतु अपितु सावित्री साधना का उच्चस्तरीय प्रयोग साथ जुड़ा होने से नया वातावरण बनाने के निमित काम भी आती हैं। षटचक्र वेधन के साथ जब पंच कोशों के जागरण की प्रक्रिया भी सम्पन्न होती है तो अनेक प्रकार के सृजन प्रयोजनों में उनका उपयोग होता है। मकान बनाने हेतु ईट, चूना, लोहा, लकड़ी व श्रमिक की जरूरत पड़ती है। भोजन बनाने में ईधन, आग, बर्तन, खाद्यपदार्थ और पकाने वाले की जरूरत पड़ती है। पंचरत्न प्रसिद्ध है। शरीर का निर्माण पंचरत्नों से व चेतना का आविर्भाव पंच प्राणों से हुआ है। यह शक्ति–स्त्रोत, जीवनी–शक्ति का ही दूसरा नाम है। प्राणाग्नि का उत्तेजन, कुण्डलिनी जागरण जब पंचकोशी साधना–सावित्री साधना के समन्वित रूप में होता है तो उसका प्रभाव क्षेत्र अति विस्तृत हो जाता है। समस्त विश्व के सम्मुख जितनी विकट समस्याएं अभी सामने हैं वे पहले कभी देखने में नहीं आई। अणु–आयुधों का विस्तार, नक्षत्र युद्ध की आसन्न विभीषिका, चारों ओर संव्याप्त वैचारिक एवं पर्यावरण प्रदूषण, प्रकृति का असंतुलन एवं मारक रोगों की भरमार, अपराध–आतंक की काली साया देखते हुए लगता है कि यह प्रयोग अब विशाल–व्यापक स्तर पर करना ही अभीष्ट है। इन पर विजय पाने वाले योद्धाओं–सृजन शक्तियों के प्रजनन में साधनात्मक कष्ट तो है पर उसक प्रतिफल इतना शानदार है जिसकी तुलना अब तक के पराक्रमों से नहीं की जा सकती। वे एक नया अध्याय ही जोड़ेगे।

इन पृष्ठों में दैवी प्रेरणावश एक व्यापक जनसमूह के शक्ति जागरण की प्रक्रिया हेतु किए गए प्रयोगों में से मात्र उन्हीं का रहस्योदृघाटन हो रहा है जो सर्वोपयोगी हैं। विधि–विधान की जटिलता में जाने की पाठकों को आवश्यकता नहीं। उन्हें तो मात्र फलितार्थ देखने व अपनी भूमिका कहां हो यह बात समझनी हैं। यहां यह स्पष्ट करने का प्रयास किया जाना है कि व्यक्ति का आन्तरिक विकास उसे इस स्थिति तक पहुंचा सकता है कि वह अपना ही नहीं अन्य असंख्यों का भी भला कर सकें। इतना ही नहीं, व्यापक वातावरण को आमूल–चूल बदलकर नये युग का सूत्रपात कर सके। संक्षेप में इसी प्रयोग का अनुसंधान हमारी अपनी देवात्मा भारत की कुण्डलिनी जागरण साधना के माध्यम से सम्पन्न हुआ है।कुण्डलिनी जागरण से आत्मिक और भौतिक सिद्धियाँ :

कुण्डलिनी आत्म–शक्ति की प्रकट और प्रखर स्फुरणा है। यह जीवन की ईश्वर प्रदत्त मौलिक शक्ति है। प्रसुप्त स्थिति में वह अविज्ञात बनी और मृत तुल्य पड़ी रहती है। वैसी स्थिति में उससे कोई लाभ उडाना सम्भव नहीं हो पाता। यदि उसकी स्थिति को समझा जा सके तो प्रतीत होगा कि अपने ही भीतर वह भण्डार भरा पड़ा है जिसकी तलाश में जहां–तहां भटकना पड़ता है। वह ब्राह्मी शक्ति अपने ही अन्तराल में छिपी पड़ी है, जिसे कामधेनु कहा गया है। आत्मसत्ता में सन्निहित इस महाशक्ति का परिचय कराते हुए साधना शास्त्रों ने यह बनाने का प्रयत्न किया है कि अपने ही भीतर विद्यमान इस महती क्षमता का ज्ञान प्राप्त किया जाय और उससे सम्पर्क साधने का प्रयत्न किया जाय। कुण्डलिनी परिचय के कुछ उद्धरण इस प्रकार हैं –

मल–मूल छिद्रों के मध्य मूलाधार चक्र में कुण्डलिनी का निवास माना गया है। इसे प्रचण्ड शक्ति स्वरूप समझा जाय। यह विद्युतीय प्रकृति की है। ध्यान से वह कोंधती बिजली के समान प्रकाशवान् दृष्टिगोचर होती है। कुण्डलाकार है। उसका स्वरूप प्रसुप्त सर्पिणी के समान है।

यह उसके स्थान का परिचय हुआ। अब उसका आधार, कारण, स्वरूप एवं प्रभाव समझने की आवश्यकता पड़ेगी। बताया गया है कि यह ब्रम्ही शक्ति है। स्वर्ग से गंगा अवतरिक होकर पृथ्वी पर आई थी और इस लोक को धन्य बनाया था। इसी प्रकार यह ब्राह्मी शक्ति सत्पात्र साधकों की आत्म सत्ता पर अवतरित होती है और उसे हर दृष्टि से सुसम्पन्न बनाती है। कहा गया है कि –

ज्ञेयाशक्तिरिय विष्णोनिर्भिया स्वर्णभास्वरा।
सत्वं रजस्तमश्चेति गुणत्रय प्रसूतिका।।
मूलाधारस्थ वन्हयात्मेंजो मध्ये व्यवस्थिता।
जीवशक्तिः कुण्डलाख्या प्राणाकाराथ तेजसी।।
महाकुण्डलिनीप्रोक्ता परब्रम्हास्वरूपिणी।
शब्दब्रम्हामयी देवी एकानेकाक्षराकृतिः।।
शक्ति कुण्डलिनी नाम विसतन्तु निभा शुभा।

– महायोग विधान

यह स्वर्ण समान आभा वाली महाशक्ति कुण्डलिनी निर्भयता प्रदान करने वाली है। वही वैष्णवी है। सत, राज, तम तत्वों को उत्पन्न करने वाली है। मूलाधार के मध्य में आत्म तेज रूपी अग्नि पुंज होकर विराजमान है।

जीवनी शक्ति वही है। तेजस्वी प्राण ही उसका आकार है। यह परब्रम्हा स्वरूपिणी है। यह शब्द ब्रम्हामय है। इसकी अनेक आकृतियां हैं। इन शुभ कामनाओं को पूरा करने वाली शक्ति का नाम कुण्डलिनी है।

स्वयं भू शिवलिंग में तीन लपेटे लगाकर सुप्त सर्पिणी की तरह पड़े होने की उपमा में यह संकेत है कि उसमें तीनों ही क्षमताएं विद्यमान हैं जो मानवी अस्तित्व को विकसित करने के लिए मूलभूत कारण समझी जाती है। आकांक्षा विचारणा, क्रिया एवं साधन सामग्री के आधार पर ही मनुष्य आगे बढ़ता, सफलता पाता और प्रसन्न होता है। इन तीनों के बीज अन्तर में कुण्डलिनी शक्ति के रूप में विद्यमान हैं इन्हें विकसित करने पर यह तीनों क्षमताएं भीतर से उमँगती हैं तो बाहर के स्वरूप साधन मिलने पर भी उनको समुन्नत बनने का सहज अवसर मिल जाता है तो अन्तः क्षमता प्रसुप्त हो तो बाहर के विकास उपचार सफल नहीं होते, किन्तु भीतर के स्त्रोत उमँगों का बाह्य क्षेत्र में उभरना कठिन नहीं है। गायत्री के तीन चरण कुण्डलिनी के तीन लपेटे हैं और उन्हें मानव जीवन की मूल–भूत क्षमताओं के रूप में माना गया है।

प्रकृतिः निश्चला परावाग्रू पिणी परप्राणवात्मिका
कुण्डलिनी शक्तिः – प्रपंच सार तन्त्र

यह कुण्डलिनी महाशक्ति, अविचल प्रकृति और परावाणी है। यह पर ब्रम्हा है।

इच्छाशक्तिश्च भूःकारः क्रिया शक्तिर्भुवस्तथा।
स्वःकारः ज्ञान शक्तिश्च भूर्भुवः स्वः स्वरूपकम।
भूः–इच्छा शक्ति; भुवः–क्रिया शक्ति; स्वः–ज्ञान शक्ति, यह तीन व्याहृतियों का स्वरूप है।
सात्विकस्य ज्ञान शक्ति राजसस्य क्रियात्मिका।
द्रव्य शक्तिस्तामसस्य तिस्रश्चामाथिताभव। – देवी भगतवी

सात्विक ज्ञान शक्ति, राजस क्रिया शक्ति और तामस द्रव्य शक्ति यह तीन शक्तियां कही गई हैं।

ज्ञानेच्छाक्रियाणां तिमृणां व्यष्टीनां महासरस्वती महाकाली महालक्ष्मीरित।

ज्ञान शक्ति, इच्छा शक्ति और क्रिया शक्ति यह तीन ही शक्ति की प्रकृति हैं। इन्हें ही महा सरस्वती, महाकाली और महालक्ष्मी कहते है।

केचित्तां तप इत्याहुस्तमः केचिज्जडं परे। ज्ञान मायां। प्रधानं च प्रकृति शक्तिमप्यजाम्। आनन्दरूपता चास्याः परप्रेमास्पदत्वतः। —देवी भागवती

कोई मुझे तपः—शक्ति कहते हैं। कोई जड़। कोई ज्ञान कहते हैं। कोई माया प्रकृति। मैं ही परम प्रेमास्पद तथा आनन्दरूपा हूँ।

अहमेव स्वयमिदं वदामि
जुष्ट देवेभिरूत भानुषेभिः
य यं कामये तं तमुग्रं कुणोभि
तं ब्रम्हाणं तमृषि तं सुर्मेधाम्।। ऋ. 10/125/5

देवताओं और मनुष्यों को अभीष्ट—प्राप्ति का मार्ग मै ही बतलाती हूँ। जो मेंरी (विवेक—शक्ति की) उपासना कर मुझे प्रसन्न करता है, उसे ही मैं प्रखर बनाती हूँ। ब्राम्हण, ऋषी तथा मेधावी बनाती हूँ।

अपने में ही विद्यमान परम वैभव के सम्बन्ध में अपरिचित रहना यही अध्यात्म की भाषा में अज्ञान या अन्धकार है। इसकी निवृत्ति को ही आत्म ज्ञान की आत्म साक्षात्कार की महान उपलब्धि कहा गया है। प्रसुप्ति को जागृति में बदल देना खोये को तलाश कर लेना यही परम पुरूषार्थ है। आत्म—साधनाओं को परम पुरूषार्थ कहा गया है। सामान्य पुरूषार्थो से धन, बल, थोड़ी सी भौतिक उपलब्धियां स्वल्प मात्रा में उपार्जित की जा सकती हैं। वे भी अस्थिर होती हैं और मिलने के बाद उलटी अतृप्ति, भड़काती चलती हैं। किन्तु आत्मिक विभूतियों को उपार्जित करने की दिशा में बढ़ने पर प्रत्येक चरण क्रमशः अधिक उच्चस्तरीय प्रस्तुत करता चलता है। वे स्थायी भी होते हैं और तृप्ति कारक भी। उनसे अपना भी कल्याण होता है और दूसरों का भी। इन्हीं तथ्यों को ध्यान में रखते हुए आत्म—साधना को परम पुरूषार्थ कहा गया है।

सोता हुआ मनुष्य मृत तुलय निष्क्रिय पड़ा रहता है। जागृति होते ही उसकी समस्त क्षमतायें जाग जड़ती हैं। प्राण—शक्ति कुण्डलिनी शक्ति के सम्बन्ध में भी यही बात है जिसकी अन्तःशक्ति मूर्छित है, समझना चाहिए कि वह तत्वतः सोया हुआ ही है। जिसका अन्तराल जग पड़ा उसकी महान् सक्रियता को कार्यान्वित होते हुए देखा जा सकता है। सोने की, जागृति की स्थिति में जितना अन्तर होता है उतना ही आत्म शक्ति के प्रसुप्त और जागृत होने की स्थिति में समझा जा सकता है। इसी प्रसुप्ति और जागृति के अन्तर

की चर्चा ताण्ड्य ब्राम्हण में इस प्रकार हुई है–

कुण्डलिनी की प्रसुप्ति को जागृति में बदलने के लिए 'साधन' का उपाय अपनाना पड़ता है। इस जागरण प्रयास में लगने के लिए जो साहस करते हैं, वे भौतिक और आत्मिक दोनों ही क्षेत्रों में समुन्नत स्थिति प्राप्त करते चले जाते हैं। इस महान् जागरण के लिए प्रोत्साहित करते हुए शास्त्रकार कहते हैं –

तदाहुः कोऽस्वप्नु यर्हतिः यद्वाव प्राण जागीत् देव जागरिम् इति। – ताण्ड्य

कौन सोता है?कौन जागता है?जिसका प्राण जागता है, वस्तुतः वही जागता है।

मूलाधारे आत्मशक्तिः कुण्डलिनी परदेवता।
शीयिता भुजगाकारा साद्धत्रय वलयान्विता।।
यावत्सा निद्रिता देहे तावज्जीवः पशुर्यथा।
ज्ञानं न जायते तावत् कोटियोग विधेरपि।।
आधार शक्ति निद्रायां विश्वं भवति निद्रयां।
तस्यां शक्तिप्रबोधेने त्रैलोक्य प्रति बुध्यते।। – महायोग विज्ञान

आत्म शक्ति कुण्डलिनी मूलाधार चक्र में साढ़े तीन कुण्डलिनी लगाये हुए सर्पणी की तरह ध्यान करती है। जब तक वह सोती है तब तक जीवन पशुवत् बना रहता है। बहुत प्रयत्न करने पर भी तब तक उसे ज्ञान नहीं हो पाता। जिसकी यह आधार शक्ति सो रही है उसका सारा संसार ही सो रहा है, पर जब वह जागती है तो उसका भाग्य और संसार ही जाग पड़ता है।

विद्युल्लता परा जाता पंचानांमात् रूपिणी।
अभ्यासां मार्ग योगात् सैका षोढा प्रजायते।
परचेतथा ज्ञानाकिया कुण्डलिनि नीति चं।

बिजली जैसी चमकवाली, पंच तत्वों एवं पंच प्राणों की माता, परम चेतना ज्ञान शक्ति तथा क्रिया शक्ति कुण्डलिनी, योग साधना से उपलब्ध होती है।

प्रत्येककर्मसाफल्यं यत्प्रबोधे प्रजायते।
अंतस्तस्याः प्रबोधाय शक्तेर्यत्नवान भवेत्।। – महायोग विज्ञान

प्रत्येक कर्म की सफलता उस कुण्डलिनी के जागने से प्राप्त होती है।

अतएव उस महाशक्ति को जगाने के लिए प्रबल प्रयत्न करना चाहिए।

मूलाधारे कुण्डलिनी भुजंगाकार रूपिणी।
जीवात्मा तिष्ठति तत्र प्रदीप कलिकाकृतिः।
बहुभाग्यवशाद्यस्य कुण्डली जागृता भवेत्।।

घरेण्ड संहिता 6/16/18

मूलाधार चक्र में सर्पिणी आकार की कुण्डलिनी शक्ति है जो दीपक की लौ जैसी दीप्तिमान है। वही जीवात्मा का निवास है।

हे चण्ड, जिसकी कुण्डलिनी शक्ति जागृत हो जाए उससे बड़ा भाग्यशाली मानना चाहिए।

सुप्ता नागोपमाह्येष स्फुरन्ती प्रभवा स्वया।
अहिवत् संधि संस्थाना वाग्देवी बीज सज्ञका।
ज्ञेया शक्तिरियं विष्णोर्निभया स्वर्ण भास्करा।।

R– शिव संहिता

यह कुण्डलिनी शक्ति सुप्त सर्पिणी के समान है। वही स्फुरणा, गति, ज्योति एवं वाक् है। यह विष्णु शक्ति हैं स्वर्णिम सूर्य के समान दीप्तिवान् है।

सा यथा योज्यते यत्र तेन् निर्यात्य तथा।।
संवितिः सेव यात्यंग रसाद्यन्तं यथाक्रमम्।
रसेनापूर्णतामेति तंत्रीभार इवाम्बुना।।
रसानापूर्ण यमाकारं भावयत्याशु तत्तथा।
धाते चित्रकृतो बुद्धो रेखा राम यथा कृतिम्।।

– योग विशिष्ठ

यह कुण्डलिनी शक्ति रस भावना से ओत–प्रोत है। उसके जागृत होने पर मनुष्य रस भावनाओं से ऐसे भर जाता है जैसे पानी भरने से चमड़े का चरस। यह रसिकता अनेक कलाओं के रूप में विकसित होते हुए जीवन को रससक्ति बना देती है।

इच्छा–ज्ञान–क्रियात्मासौ तेजोरूपा गुणात्मिका।
क्रर्मेणानेन सृजति कुण्डली वर्णमालिकाम्।।
गुणितासर्वगात्रेषु कुण्डली पर देवता।
विश्वात्मना प्रबुद्धा सा सूते मंत्रमयं जगत्।।
एकथा गुणिता शक्तिः सर्व विश्वप्रवर्तिनी।

– महायोग विज्ञान

तेजस्वरूप कुण्डलिनी जागृत होने पर इच्छा शक्ति, ज्ञान शक्ति और क्रिया शक्ति को प्रखर बनाती है। सम्पूर्ण शरीर पर उसका प्रभाव दीखने लगता है। प्रसुप्त मन्त्रमय जगत जागृत हो उठता है। विश्वात्म ज्ञान जागृत होता है। विश्व का प्रवर्तन करने वाली कुण्डलिनी साधक को अनेक गुण शक्ति सम्पन्न बना देती है।

कुण्डलिनी जागरण के प्रतिफल से परिचित होने पर साधक उसके लिए साधन प्रयास आरम्भ करता है और उस परम पुरूषार्थ का समुचित लाभ प्राप्त करता है। कहा गया है कि

शक्ति कुण्डलिनोति विश्व जनन व्यापार व्रद्धोद्यामा
ज्ञात्वे यं न तुनर्वशान्ति जननागर्मेकत्व नराः।

– शक्ति तंत्र

कुण्डलिनी महाशक्ति के प्रयत्न से ही यह सारा संसार व्यापार चल रहा है जो इस तथ्य को जान लेता है। वह शोक संतप्त भरे बंधनों से बंधा नहीं रहता।

योग के आधार पर आध्यात्मिक और तन्त्र के आधार पर भौतिक उन्नति का पथ प्रशस्त होता है। कुण्डलिनी जागरण में उभय पक्षीय सम्भावनाएं सन्निहित हैं। यह दोनों ही प्रयोजन उससे सिद्ध होते हैं। गाड़ी के दो पहिये–पक्षी के दो पंख, मनुष्य के दो हाथ मिलकर जिस तरह उनकी क्षमता को मूर्तिमान बनाते है; उसी प्रकार कुण्डलिनी जागरण की प्रतिक्रिया जीवन के दोनों पक्षों को समुन्नत बनाती हैं। हठयोग प्रदीपिका में इसी तथ्य को इस प्रकार प्रतिपादित किया गया है।

सशैलवन धात्रीणां यथाधीराऽहिनायकः।
सर्वेषां योगतन्त्राणां तथा धारोहि कुण्डली।।
सप्ता गुरूप्रसादेन यथा जागति कुण्डली।
तदा सर्वाणि पद्मानि भिद्यंते ग्रंथायाऽपि च।।

हठयोग प्रदीपिका

जिस प्रकार सम्पूर्ण वनों सहित जितनी भूमि है,उसका आधार शेषनाग है, उसी प्रकार समस्त योग साधनाओं का आधार भी कुण्डली ही है, जब गुरू की कृपा से सोयी हुई कुण्डली जागती हे, तब सम्पूर्ण पथ (षट् चक्र) और ग्रन्थियाँ खुल जाती है।

योगिनां हृदयाम्बुजे नृत्यन्ती नृत्यमज्जसा।
आधारे सर्व भूतानां स्फुरन्ति विद्युताकृति।।

अर्थात् योगियो के हृदय देश में वह नृत्य करती रहती है। यही सर्वदा प्रस्फुटित होने वाली विद्युत रूप महाशक्ति सब प्राणियों का आधार है।

सुप्ता सर्वोपमा मौला पाति साधकमीश्वरी।।
चैतान्या कुण्डलीशक्तिर्वायवी बलतेजसा।
चैतन्या सिद्धिहेतुस्था ज्ञानमात्रं ददाति सा।।
ज्ञानमत्रेण मोक्षः स्याद्वायवी ज्ञानमाश्रयेत्। – महायोग सूत्र

अनन्त शक्तियों की भण्डार सुप्त सर्पिणी कुण्डलिनी अपने साधक का पालन और रक्षण करती है सो मुक्ति के आकांक्षी उसी का साधना करते हैं। प्राण वायु के द्वारा जागृत हुई यह कुण्डलिनी साधक के लिए सिद्धियों का आधार बनती है और उसे परम ज्ञान प्रदान करती है।

वेदाधीनं महायोगं योगाधीनो च कुण्डली।
कुण्डल्यधीनं चित्तंतुचित्ताधीनं चराचरम्।।
मनसः सिद्धि मात्रेण शक्तिसिद्धिर्भवेद् ध्रुवम्।
यदि शक्तिवशीभूता त्रैलोक्य स्यात्तदा वशे।।

वेद के आधीन योग है। योग के आधीन कुण्डलिनी। कुण्डलिनी के आधीन चित्त है और चित्त के आधीन चराचर जगत।

मन की सिद्धि होने से शक्ति की सिद्धि हो जाती है और जिसने शक्ति को वश में कर लिया तीनों लोक उसके वश में होते हैं।

उद्घाटयेत्कपाटं तु यथा कुन्चिकया हठात्।
कुण्डलिन्या तथा योगी मोक्षद्वारं विभेदयेत्।
येन मार्गेण गंतव्यं ब्रम्हास्थानं निरामयम्।
मुखेनाच्छोद्य तद्द्ववारं प्रसुप्ता परमेंश्वरी।।
ठंदोर्ध्व कुण्डली शक्तिःसुप्ता मोक्षाय योगिनाम्।
बंधनाय च मूढ़ानां यस्तां वेत्ति स योगवित्।।

– हठ योग प्रदीपिका 3/105 से 107

अर्थात् जिस प्रकार कुंजी से किवाड़ खोले जाते हैं, वैसे ही योगी कुण्डलिनी द्वारा मोक्ष द्वार को खोलते हैं।

निरामय ब्रम्हा स्थान को जाने वाले मार्ग को अपने मुख से ढाँके कुण्डलिनी परमेश्वरी सोती रहती है। कन्द के ऊर्ध्व में सोयी पड़ी यह

कुण्डलिनी ही (जागने पर) योगियों के मोक्ष का साधन बनती है और (सोती रहने पर) मूढ़ो के बन्धन का कारण बनी रहती है। इस रहस्य को जानने वाला ही योगी होता है।

नमस्ते देवदेवेशि योगीश प्राणवल्लभे।
सिद्धिदे वरदे पातः स्वयंम्भूलिंगवेष्टिते।।
प्रसुप्तभुजगाकारे सर्वदा कारणप्रिये।
कामकलान्विते देवि! मनोऽभीष्टं कुरूष्व च।।
असारे धोरसंसारे भवरोगान्महेश्वरि।
सर्वदा रक्षा मां देवि! जन्मसंसाररूपकात्।।
इति कुण्डलिनीस्तोत्रं ध्यात्वा यः प्रपठेत्सुधीः। – योग सार

योगियों की प्राण वल्लभा सिद्धीदायनी, वरदायनी, स्वयं भू लिंग के साथ लिपटी हुई, सोई सर्पिणी के रूप वाली, काम कालान्वित अभीष्ट फलदायह है। हे देव देवेशि आपको नमस्कार। इस सार रहित घोर कष्टदायक भव रोगों से घिरे, जन्म मरण रूपी संसार में हे देवि, मेरी रक्षा कीजिए। इन भावनाओं के साथ प्रज्ञावान साधक कुण्डलिनी महाशक्ति का ध्यान एवं स्तवन करें।

कुण्डलिनी जागरण से व्यक्तित्व में क्रान्ति :

परब्रम्हा को जहां सर्वव्यापी, सर्वशक्तिमान, निर्विकार और निर्लिप्त कहा जाता है, वहीं उसे निष्क्रिय भी माना गया है। निष्क्रिय अर्थात् गुम–सुम बैठा रहने वाला, जिसकी न कोई इच्छा है और न कोई आकांक्षा ऐसा ब्रम्हा विश्व के सृजन और पालन का उत्तरदायित्व भला कैसे पूरा कर सकता था। इसलिए उसे जागृत करने की आवश्यकता पड़ी। उस आवश्यकता की पूर्ति उसकी शक्ति ने की। यह शक्ति या शिवत्तव ही ब्रम्हा को क्रियाशील बनाती है।

परब्रम्हा की भांति उसका अंश आत्मा भी सर्व शक्तिमान, निर्विकार और निर्लिप्त होने के साथ–साथ निष्क्रिय भी है। सामान्य अवस्था में वह प्रसुप्त ही रहती है। लेकिन जब उसकी शक्ति जागृत हो जाती है तो साधारण दिखाई देने वाला मनुष्य भी असाधारण और असामान्य क्षमता संपन्न दिखाई पड़ने लगता हैं। आत्मा को प्रसुप्तावस्था से जागृत कर व्यक्ति को असाधारण शक्ति संपन्न बना देने वाली शक्ति का नाम कुण्डलिनी है। उसका स्थान काय कलेवर में मेरूदण्ड के अंतिम भाग में स्थित मूलाधार चक्र माना जाता है। इस संस्थान को आंखों या विज्ञान के यंत्रों से नहीं देखा जा सकता। वहां

तक पहुंचने और उस स्थान को उद्दीप्त कर जागृत करने में केवल भारतीय योग विद्या ही समर्थ हैं।

गुदा क्षेत्र में सोई कुण्डलिनी दो धाराओं इड़ा और पिंगला (यह नाड़ियां ऋण विद्युत और धन विद्युत के समान ही होती हैं, पर उस प्राण–विद्युत और इस दृष्टिगत विद्युत के आण्विक स्वरूप में अन्तर है) में होकर उपर को उठती है और मस्तिष्क में जाकर मूढ़ ब्रम्हा की चेतना को झकझोरती है। कुण्डलिनी यदि जागृत नही है तो इड़ा और पिंगला अपने सामान्य परिवेश में ही कार्य करती है उसी प्रकार मष्तिष्क भी सामान्य ढीले–पोलो काम करता रहता है, पर जागृत कुण्डलिनी के आवेश को सम्भालना तो मस्तिष्क के लिए भी कठिन हो जाता है। फिर वह बैठा नहीं रह सकता। कुछ न कुछ उछल कूद, तोड़–फोड़, बनाव श्रृंगार उसे करना ही पड़ता है। जिस व्यक्ति की कुण्डलिनी जाग जाती है वह जागृत अवस्था की तरह गम्भीर निद्रावस्था में भी उतना ही सचेतन रहता है। उसकी स्वप्न और जागृति में कोई अन्तर नहीं आता। जिस तरह जागृत अवस्था में वह किसी से बातचीत करता सुनता, सोचता, विचारता प्रेरणा देता, सहायता, सहयोग देता रहता है, उसी प्रकार स्वप्नावस्था में भी उसकी गतिविधियां चला करती हैं। उस अवस्था में वह किसी का भला भी कर सकता है ओर नई–नई जानकारियों के लिये अन्य ब्रम्हाण्डों में सैर के लिए भी जा सकता है। अन्य ब्रम्हाण्डों का अर्थ विशुद्ध रूप से सूर्य, चन्द्र, बृहस्पति, शुक्र, हर्शल, प्लूटो आदि से है। यह आश्चर्य करने वाली बात उसके लिये बिल्कुल साधारण और सामान्य होती है। साधना में लीन व्यक्तियों को कभी–कभी रात में ऐसे कुछ स्वप्न हो जाते हैं जिसमें उन्हें किसी भविष्य की घटना का पूर्वाभास मिल जाता है या किसी गोपनीय रहस्य का पता चल जाता है। वह कुण्डलिनी की ही शक्ति होती है।

हमारी धरती गोलाकार है। उसके केन्द्र में अति गर्मी है जिससे वहां की सब वस्तुयें और धातुयें गली हुई तरल स्थिति में होती हैं। मूलाधार की वह गांठ, जहां मेरूदण्ड समाप्त होता है और जिसे अनेक नाड़ी गुच्छकों ने बांध रखा है, का भेदन किया जाय तो वहां अत्यन्त तेजस्वी और उष्ण शक्ति मिलती है, यही कुण्डलिनी है।

जब कुण्डलिनी जागृत हो जाती है तो इड़ा और पिंगला समान गति से ऊर्ध्वगामी हो जाती हैं और एक तीसरी धारा सुषुम्ना का आविर्भाव होता है उससे ऊर्ध्वमुखी लोकों की अनुभूति और गमन का सुख मिलता है। यह

सुख सम्भोग सुख जैसा होता है पर सम्भोग का सुख क्षणिक होता है, जबकि ऊर्ध्वमुखी आध्यात्मिक सुख का रसास्वादन निरन्तर किया जा सकता है, पर उसके लिए कुण्डलिनी को जगाना आवश्यक हो जाता है। कुण्डलिनी जगाने का अर्थ भीतर गोलों की कुण्डलिनी को सक्रिय करना है। पवित्रता के बिना यह कार्य सम्पन्न नहीं हो सकता इसलिए कुण्डलिनी जागरण की विद्या को गुप्त रखा गया है।

कुण्डलिनी के दो उत्पत्ति स्थान माने गये है। एक सूर्य के केन्द्र में निवास करने वाली पुरूष रूपी और दूसरी स्त्री रूप में पृथ्वी केन्द्र में। पृथ्वी केन्द्र में कुण्डलिनी को प्राणधारियों की जीवन सत्ता का केन्द्र कह सकते हैं। यह दरअसल सूर्य कुण्डलिनी का ही बीज है। कहा जाता है कि संसार में जो कुछ भी प्रकट अप्रकट है वह बीज रूप से देह में विद्यमान है। सूर्य भी कुण्डलिनी के रूप में शरीर में बैठा हुआ है और मूलाधार ग्रन्थि का विकास होता है तो उसमें सूर्य का प्राण प्रतिष्ठित हो जाता है और उसकी जागृत अवस्था सूर्य जैसी हो जाती है। अर्थात् उसमें मनुष्य की शक्ति सूर्य जैसी शक्ति वाली, सर्वव्यापी सर्व समर्थ हो जाती है फिर उस शक्ति का नियन्त्रण करना कठिन हो जाता है। कमजोर मन और शरीर वाले उस शक्ति को धारण नहीं सकते।

गायत्री का देवता सविता है और कुण्डलिनी की प्रतिनिध शक्ति भी सूर्य ही है इसलिये गायत्री उपासना का सीधा प्रभाव मेंरूदण्ड से होकर इस गुदा क्षेत्र में ही पड़ता है। ऊपर से उतरने वाला प्राण प्रवाह पहले यहीं पहुंचता है और फिर गुच्छकों के द्वारा सारे शरीर में संचित होता रहता है। जितना अधिक साधन का विकास होता है उतना ही प्राण शक्ति का अभिवर्द्धन और उसी अनुपात से कुण्डलिनी जागृत होती है। यह प्रकाश धीरे–धीरे नेत्र, वाणी, मुख और ललाट आदि सम्पूर्ण शरीर में चमकने लगता है। त्वचा में यही कोमलता और बुद्धि में सात्विकता एवं पवित्रता की अभिवृद्धि करता है। यह क्रिया धीरे–धीरे होती है इसलिये हानि की भी आशंका नहीं रहती। उपासक अपने आत्म–कल्याण भर के संकेत प्राप्त करता हुआ जो वास्तविक लक्ष्य है वह जीवन–मुक्ति भी प्राप्त कर लेता है।

सविता लोक से आने वाले प्राणकण यद्यपि बहुत छोटे होते हैं, किन्तु इतने प्रकाशमय होते हैं कि बिना दिव्य–दृष्टि के भी उन्हें देखा जा सकता है। आसमान की ओर देखने पर वायु में छोटे–छोटे प्रकाश के कण अति

शीघ्रता से चारों और उछलते हुए दीख पड़ते हैं। यह प्राणकण ही हैं। यह कण सात ईथर कणों से विनिर्मित होता है। यह प्राण–कण सफेद होता पर ईथर के सातों अणु सात रंगों के बने होते हैं। सूर्य भी सात रंगों का प्रकाश है। नाभि–चक्र में घुसने पर यह रंग अलग–अलग होकर अपने क्रिया क्षेत्र में बंट जाते हैं। नीला और लाल रंग मिली हुई हल्की बैंगनी (बायोलेट) और नीली किरणें कंठ में चली जाती है और हल्की नीली कण्ठ चक्र में। यह दोनों गले को शुद्ध रखती हैं और वाणी को मधुर बनाती हैं। कासनी और गहरी नीली मस्तिष्क में चली जाती है उससे विचार, भक्ति और वैराग्य के गुणों का आविर्भाव होता है। गहरा नीला मगज के निचले और मध्य भाग तथा नीला रंग सहस्त्रार का पोषण करता है।

पीली किरणें हृदय में प्रवेश करती हैं। उससे रक्तकणों की शक्ति और स्निग्धता बढ़ती है। शरीर सुन्दर बनता है। यही किरणें बाद में मस्तिष्क को चली जाती है जिससे विचार और भावनाओं का समन्वय होता है।

हरी किरणें पेट की अन्तड़ियों में कार्य करती हैं। इससे पाचन क्रिया सशक्त बनती है। गुलाबी किरणें ज्ञान तन्तुओं के साथ सारे शरीर में फैलती हैं। आरोग्य की दृष्टि से इन किरणों का बड़ा भारी महत्व है इनकी बहुतायतें वाला व्यक्ति किसी को भी हाथ रखकर स्वस्थ्य कर सकता है। देवदारू और यूकेलिप्टस वृक्ष में इन किरणों की बहुतायत होती है जिससे उनकी छाया भी बहुत आरोग्यवर्धक होती है। नारंगी लाल किरणें जननेन्द्रियों तक पहुंचकर गुदा वाले रोग ठीक कर देती हैं और शरीर की गर्मी में सन्तुलन रखती हैं। हल्की बैंगनी किरणें भी यहां आकर इस क्रिया में हाथ बंटाती हैं। यदि कामवासना पर नियन्त्रण रखा जा सके तो इन किरणों को ही मस्तिष्क में भेजकर भविष्य ज्ञान, दूरदर्शन श्रवण आदि चमत्कार प्राप्त किये जा सकते हैं।

इस प्रकार कुण्डलिनी जागरण से आंतरिक कलेवर में आमूल चूल परिवर्तन आ जाता है। इस जागरण से व्यक्तित्व में गुण, कर्म स्वभाव, संस्कार, दृष्टिगोचर, विवेक, प्रभाव, प्रतिभा, मनोबल, आत्मबल आदि की जो विशेषताएं दृष्टिगोचर होती हैं, उन्हें चेतना तत्व से भाव संवेदन की उपलब्धि माननी चाहिए। इसका केन्द्र मस्तिष्क स्थित सहस्त्रार कमल है। कालाग्नि यहीं शिव स्वरूप विद्यमान है। व्यक्तित्व की भावनात्मक चेतनात्मक प्रखरता एवं शरीर की असामान्य क्रियाशीलता–आत्म विद्या के दो लाभ कहे गये हैं।

इन्हीं को विभूतियां और सिद्धियां भी कहते हैं। विभूतियां मस्तिष्क केन्द्र से (ज्ञान संस्थान से) भाव ब्रम्ह से प्रसूत होती है और सिद्धियां काम केन्द्र से, शक्ति निर्झर से, कुण्ड कुण्डलिनी से प्रादूर्भूत होती हैं। इन दोनों शक्ति केन्द्रों को मानवीय अस्तित्व के दो ध्रुव मानना चाहिए। पृथ्वी के दो सिरों पर उत्तरी दक्षिणी दो ध्रुव है। ठीक इसी प्रकार मनुष्य का मस्तिष्क केन्द्र उत्तरी ध्रुव और काम केन्द्र दक्षिणी ध्रुव कहा जा सकता है। इन केन्द्रों में सन्निहित असंख्यों दिव्य क्षमताओं का उन्नयन प्रगटीकरण एवं उपयोग कुण्डलिनी जागरण से हो सकता है।

वस्तुतः कुण्डलिनी जागरण का उद्धेश्य मूलाधार से सहस्त्रार, कामबीज से ब्रम्हबीज तक पहुंचने का है। उन दोनों की असीम एवं अनन्त जानकारी प्राप्त करने और उन सामर्थों को जीवन विकास के अन्तरंग और बहिरंग क्षेत्रों में ठीक तरह प्रयोग कर सकने की विद्या का नाम ही कुण्डलिनी विज्ञान है। इस साधना में एक प्रकार से शरीर में प्राण और संकल्प के आघात से परमाणु ऊर्जा उत्पन्न की जाती है और उसका नियंत्रण नियमन किया जाता है। मूर्धन्य वैज्ञानिक एवं अनुसंधानकर्ता प्रो. वीन वेजसेकर ने कुण्डलिनी जागरण में प्राण तत्व के नियंत्रण और नियमन पर अधिक बल दिया है। उनका कथन है कि इसकी संगति भौतिक विज्ञान के क्वांटम सिद्धान्त से बिठाई जा सकती है। दोनों के परमाणु सूक्ष्म स्तर के होते हैं। सूक्ष्म शरीर का प्राण प्रवाह ही कुण्डलिनी है। षट्चक्रों को जगाने–वेधन करने की क्षमता इसी प्राण–शक्ति में होती है। इसलिए भौतिक एवं आत्मिक प्रगति के लिए इसके शोधन, परिष्कार एवं उन्नयन के विविध विधि साधना विधानों को अपनाने का योगशास्त्रों में उल्लेख मिलता है।

योग उपनिषद् में कहा गया है कि "कुण्डलिनी शक्ति जो कुण्डलित स्थिति में मानवी काया में विद्यमान है, यदि उसके जागरण का सही रूप से अभ्यास उच्चस्तरीय उद्धेश्यों के लिए किया जाय तो ही वह शक्ति ठीक रूप से विकसित हो सकती है अन्यथा विपरीत प्रभाव उत्पन्न करती है।" स्टडीज ऑफ रीवेज एण्ड सेक्स नामक पुस्तक के मूर्धन्य लेखक श्री क्राबेल का कहना है कि "कुण्डलिनी जागरण का मूलभूत आधार जीवन की पवित्रता है। यह साधक के शारीरिक गठन तथा गुण, कर्म, स्वभाव से प्राप्त होता है।" प्राचीन काल के भारतीय योगी एवं संत–महात्मा इसके प्रमाण हैं। आध्यात्मिक नियमों का निष्ठापूर्वक परिपालन करते रहने से एक निश्चल पवित्रता का

विकास होता है जो कुण्डलिनी जागरण के लिए अत्यधिक उपयोगी एवं महत्वपूर्ण सिद्ध होता है। इसी के आधार पर उनने जाना था कि मेंरूदण्ड के नीचे अन्तिम छोर पर इस मानव ढांचे में इतनी रहस्यपूर्ण दिव्य ऊर्जा विद्यमान है। षट्चक्र निरूपण में इसका उल्लेख करते हुए कहा गया है –''कृजन्नी कुल कुण्डली च मधुर सा मूलाम्बुज गह्वरे विलसति अर्थात् कुण्डलिनी मधुर कूजन करती है। श्वास–प्रश्वास का प्रवर्तन करती हुई वह संसार के जीवों को प्राण धारण कराती है तथा मूलाधार पद्म–गह्वर में विलास करती है। जीवन में बाह्याभ्यांतर शुचिता–पवित्रता का समावेश करके ही इसे जाना और पाया जा सकता है।

सुप्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक श्री ओवेलान ने अपनी कृति द सर्पेन्ट पावर'' में कहा है कि कुण्डलिनी शक्ति का अभिव्यक्तीकरण सृजनात्मक शक्ति के रूप में सभी मानवों में दृष्टिगोचर होता है। मानवी काया में यह महाशक्ति एक दैवी बीज के रूप में विद्यमान है, जो कालान्तर में गहन अभ्यास के द्वारा पुष्पित और पल्लवित होती है। यदि एक बार भी यह शक्ति जागृत हो गई और क्रिया–कलापों में आ गई तो साइकिक नर्व से होती हुई मस्तिष्क के सहस्त्रार अर्थात् सहस्त्र दल कमल में प्रवेश करती है। इसके जागरण और संचालन से समस्त आध्यात्मिक शक्तियां जागृत हो उठती हैं और सामान्य मनुष्य को असामान्य स्तर का महामानव–देवपुरूष की श्रेणी में पहुंचा देती है। मूर्धन्य लेखक श्री वेले ने अपनी पुस्तक ''ए ट्रीटीज ऑनि कास्तिक फायर'' में लिखा है कि मेरूदण्ड स्थित कुण्डलिनी शक्ति का जब ऊर्जा के रूप में रूपान्तरण होता है। तो मनुष्य को मोक्ष की प्राप्ति होती है। इसके जागरण और कुण्डलित सर्पणी के खुलने से मानव जाति का उत्थान श्रेष्ठता और महानता में परिणित होता है। वेले का कथन है कि कुण्डलिनी जागरण की पद्धति विकासात्मक नहीं वरन् प्रयासात्मक है। साधक को बड़े धैर्यपूर्वक कई वर्षों तक इसका निरंतर नियमित अभ्यास करना पड़ता है। साथ ही शारीरिक मानसिक एवं वैचारिक पवित्रता का बहुत ध्यान रखना पड़ता है, तभी वह लक्ष्य तक पहुंच सकता हैं पवित्रता का अंश जितनी मात्रा में विकसित होता है उसी अनुपात से उत्कृष्टता बढ़ती है और साधक को लक्ष्य के समीप पहुंचाती है।

इसी प्रकार प्रख्यात लेखक श्री लेडवीटर ने अपनी पुस्तक दी चक्रज में बतलाया है कि आचार और व्यवहार की पवित्रता के बिना उत्कृष्ट क्षमता के

इस शक्ति के जागरण के सभी प्रयास विफल हो जाते हैं। अतः इसके लिए कठोर अनुशासनात्मक जीवन–यापक करना अनिवार्य होता है। मूर्धन्य लेखक श्री प्रेसे ने अपनी कृति ' द एपोकेलिप्स अनसील्ड' में चेतावनी देते हुए लिखा है कि कुण्डलिनी जागरण एवं उसके विकास में बड़े गंभीर और भयानक खतरे भी जुड़े हुए हैं। पवित्रता के अभाव में यदि साधक का झुकाव सांसारिकता की ओर होता है तो वह पतनोन्मुखी हो जाती है और कामवासना तथा बुरे विचारों के माध्यम से जीवन को अधोगमिता की ओर ले जाती है। ऐसी स्थिति में सृजन शक्तियां दुर्बल और घटिया बनती चलती हैं। यही कारण है कि सामान्य व्यक्ति इसका अभ्यास करने और जागृत कर पाने में सर्वथा असफल पाये जाते हैं, किन्तु जो श्रेष्ठ मार्ग पर अवलम्बित होते हैं, तथा कठोर नियमों एवं सयंम का जीवन में परिपालन करते हैं वे चमत्कारी शक्तियों के भाण्डागार बन जाते हैं। ऐसे व्यक्ति बिरले ही होते हैं, किन्तु समाज के लिए–मानव जाति के लिए वे हर दृष्टि से उपयोगी और महत्वपूर्ण होते हैं। इसी तथ्य पर प्रकाश डालते हुए विद्वान लेखक एग्यूटरा ने 'निकाया' नामक अपनी पुस्तक में कहा है कि प्राचीन तत्वज्ञान के साहित्य का अवलोकन करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि मनुष्य जाति का उत्थान करने एवं उसे उत्कृष्ट बनाने में यह सर्पिणी शक्ति अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हुई है। समाज में संव्याप्त बुराइयों और दुगुर्णों के निदान के लिय यह सबसे बड़ा पवित्र और सुनिश्चत मार्ग है, परन्तु इसका लाभ तभी कोई व्यक्ति ले सकता है जब वह अपने अंतर्तम निहित सविमों को परिशोधन एवं पवित्र बना ले।

प्रसिद्ध पुस्तक द एस्ट्रल बॉड़ी एण्ड अदर एस्ट्र फेनमिना'' में लेखक आर्थर ई. पावेल ने कहा है कि ''कुण्डलिनी जागरण की अभ्यास प्रक्रिया में मादक एवं नशीली वस्तुओं का सेवन करना अत्यन्त अनर्थकारी होता है। इससे षट्चक्रों के प्राण तत्व दूषित हो जाते हैं और उनकी झिल्लियां फट जाती हैं। दूषित तत्वों के प्रवाह से उनमें कड़ापन आ जाता है। जिससे सूक्ष्म तत्वों के प्रवाह में भी बाधा उत्पन्न हो जाती है और चक्रों का प्राण तत्व विकृत शक्तियों के प्रभाव में आ जाता है। इससे मनोविकृतियां पागलपन, कम्पन जैसी अनेकानेक बीमारियां प्रकट होने लगती हें और साधक स्वार्थी, हिंसक एवं पशुओं जैसा व्यवहार करने वाला बन जाता है। इसी तरह सामान्य लोगों के चक्रों में शुद्ध सूक्ष्म तत्वों का प्रवाह अवरूद्ध होने के कारण उनकी प्राण चेतना में निम्नस्तरीय परमाणुओं का ही प्रवाह होता रहता है जो उनकी चेतना

को अशुद्ध एवं विकृत बना देता है।

कुण्डलिनी शक्ति के जागृत हो जाने पर कभी–कभी असामयिक घटनायें भी घटित हो जाती हैं जिनसे साधक को सदैव सावधान रहना चाहिए। मस्तिष्क में महात्वाकांक्षा उत्पन्न हो जाती है। जो सम्पूर्ण काय संस्थान को उभार देती हैं अहंकार के जागृत हो जाने पर साधक का पतन हो जाता है। शारीरिक मानसिक शक्तियों का उभार,उनकी जागृति, योगियों को जहां स्वतन्त्रता प्रदान करती है आगे का मार्ग प्रशस्त करती है, वही मूर्खों के लिए बन्धन का करण बन जाती है। शारीरिक मानसिक एवं वैचारिक पवित्रता ही आधार है जो लक्ष्य की प्राप्ति में सहायक होता है।

कुण्डलिनी साधना का मर्म एवं आवश्यक मार्गदर्शन :

पदार्थो में से प्रत्येक का अपना–अपना प्रत्यक्ष प्रकट एवं अप्रत्यक्ष अप्रकट रूप है। सोना एक मूल्यवान धातु है। यह जमीन से मिट्टी मिली कच्चे अयस्क के रूप में निकलती है, परन्तु उसे परिशोधन के उपरान्त बाजार में महंगे मोल में खरीदा जाता है, सुन्दर आभूषण बनते हैं। पर जब उसे रासायनिक क्रियाओं द्वारा स्वर्ण भस्म के रूप में विकसित किया जाता है तो उसके गुणों में अद्भुत विशेषताएं दृष्टिगोचर होती हैं। वह दुर्बल शरीर को बलिष्ठ एवं दीर्घायु बनाने के काम आती है। यही विशेषताएं अन्य धातुओं में भी हैं। सामान्यतया उनके उपरकण बनते हैं पर शोधन–सूक्ष्मीकरण के उपरान्त वे रस–भस्मों के रूप में अपनी रहस्यमयी विशेषताएं प्रकट करती है। रेत के परमाणुओं का सूक्ष्म अंश अणुशक्ति उत्पादन करने के काम आता है, जिससे बिजली, विकिरण, किरणें, तथा आयुध बनते हैं। यह स्थूल का सूक्ष्मीकरण है।

यह एक सर्वविदित तथ्य है कि स्थूल की तुलना में सूक्ष्म में अगणित शक्ति होती है। मिट्टी के ढेले की तुलना में अणु–विस्फोट गजब का काम करता है। शरीर की तुलना में मनोबल की महता अत्यधिक है। पानी से भाप की समर्थता कई गुनी है। आत्मा अदृश्य है तो भी वह विकसित हो महापुरूष ऋषि, देवात्मा, एवं अवतारों के रूप में प्रकट होती है।

मानवी सत्ता का सूक्ष्मीकरण भी इसी प्रकार योग और तप के माध्यम से हो सकता है। तपस्वी अपनी शरीरगत दिव्य क्षमताओं को जगाता है। भाप से रेल चलती है और बासों के घषर्ण से दावानल प्रकट होती है। तपस्या की साधनात्मक विधि–व्यवस्था से यही प्रभाव उत्पन्न होता है। आतिशी शीशे

पर बिखरी हुई सूर्य किरणें जब एक बिन्दु पर एकत्रित की जाती हैं तो उतने भर से अग्नि की ऊर्जा दृश्यमान होने लगती है। तपश्चर्या का साधना का प्रतिफल ऐसा ही होता है।

योग से मनुष्य की तुच्छता, दिव्य लोक की महानता के साथ जुड़ती है और उस गठबंधन का परिणाम होता है – लघु और महान का एकीकरण। बिजली से जुड़ जाने पर सभी तार शक्ति शाली हो जाते हैं और अपने लिए नियोजित कार्य उस उपलब्ध शक्ति के सहारे सम्पन्न करने लगते हैं। बड़ी टंकी के साथ जुड़े हुए सभी नल तब तक पानी देते रहते हैं, जब तक टंकी भरी रहती हैं स्पष्ट है कि दिव्य चेतना की टंकी कभी खाली नहीं होती है और उसके साथ जुड़ा हुआ नल तब तक पानी फेंकता रहता है, जब तक कि कोई भारी व्यवधान बीच में आकर खड़ा न हो जाय। परब्रम्ह की दिव्य चेतना को मानवी अंश चेतना जब धारण करती है तो उसे नर से नारायण, पुरूष से पुरूषोत्तम, तुच्छ से महान बनने में देर नहीं लगती। कलेवर का विस्तार अपने साथ क्षमता को भी बढ़ाता चलता है। शेर की तुलना में हाथी का आकार ही नहीं, बल भी अधिक होता है। बच्चे की तुलना में तरूण का आकार ही बड़ा नहीं होता वरन् उसकी कार्यक्षमता भी उसी अनुपात से बढ़ जाती है। साधक की साधना उसे सिद्ध बना देती हैं।

साधनाएं इसीलिए सफल नहीं होती क्योंकि उनमें आत्मसंयम चरित्र का प्रखरीकरण और व्यवहार में उदार, सेवा–साधना का समन्वय नहीं होता। खाद पानी और रखवाली के बिना बोया हुआ बीज विशालकाय वृक्ष कैसे बने? यह तथ्य कुण्डलिनी साधना प्रकरण पर पूरी तरह लागू होता है।

कुण्डलिनी जागरण से तात्पर्य–चेतना के अन्तराल में छिपी हुई दिव्य शक्तियों का जागरण प्रचण्डीकरण। यह तीनों शरीरों में विभिन्न प्रयोजनों के लिये विभिन्न प्रकार से सम्पन्न हो सकता है।

उपाय–उपचारों की विदित और अनुभूत संख्या 14 पाई गई हैं इन 14 विभूतियों की समुद्र मंथन से निकले 14 रत्नों के साथ तुलना की जाती है। इनका वर्गीकरण इस प्रकार किया जा सकता है। स्थूल शरीर में मूलाधार से लेकर मेरूदण्ड प्रदेश से आगे बढ़ते हुये सहस्त्रार कमल, ब्रम्हारन्ध्र तक जा पहुंचने वाला षट्चक्र समूह इन्हें भौतिक क्षेत्र की समृद्धियों के उत्पादन और अवरोधों के निवारण के काम आने वाला सशक्त माध्यम कहा जा सकता है। इनकी सिद्धियां मनुष्य को सशक्त, समृद्ध और प्रचंड–पराक्रमी बनाती है।

इस आधार पर साधक सामान्यजनों की तुलना में कहीं अधिक सशंक्त हो जाता है। हमारी इन्द्रियां बहिर्मुखी ही नहीं रहती, अन्तर्मुखी होकर व्यापक क्षेत्र में भी काम करने लगती हैं। जो दृश्य आंखों से नहीं देखे जा सकते, वे दिव्य दृष्टि के जागने पर दीख पड़ते हैं। यही बात अन्य इन्द्रियों के सम्बन्ध ा में भी है। दूरदर्शन, दूरश्रदण, विचार संप्रेषण, पदार्थ संचालन प्राण प्रवाह, शक्तिपात, भविष्य ज्ञान जैसी स्थूल जगत से सम्बन्धित सिद्धियां स्थूल शरीर के क्षेत्र की कुण्डलिनी जगाने पर उपलब्ध होती हैं। ओजस् तेजस् और वर्चस् की बड़ी मात्रा का भी उपार्जन इस माध्यम से हो जाता है।

सूक्ष्म शरीर का कुण्डलिनी जागरण पंच कोशों के आधार पर होता है। अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय और आनन्दमय कोश चेतना पर चढ़ी हुई पांच परते हैं। उनमें पंच तत्वों का पंच प्राणों का समीकरण है। इन्हें पांच लोक या पांच आयाम भी कह सकते हैं। इन क्षमताओं के विकसित होने पर साधक अदृश्य जगत से जुड़ जाता है। सर्व–साधारण की जानकारी तो दृश्यमान पदार्थ जगत तक ही सीमित होती है, किन्तु सूक्ष्म शरीर की कुण्डलिनी जगाने पर मनुष्य का सम्बन्ध अदृश्य जगत से बन जाता है। उसके निवासी पितरों, देवों के साथ उसका स्नेह सम्बन्ध जुड़ता और आदान प्रदान का क्रम चल पड़ता है। वह प्रकृति के रहस्यों से अवगत होता है। भविष्य की संभावनाएं जिस प्रकार पक रही हैं,उनका पूर्वाभास भी उसे मिल जाता है। इस जानकारी के आधार पर तद्नुरूप प्रबन्ध करके अनुकूलताओं से लाभ उठाया जा सकता है। और प्रतिकूलताओं को निरस्त किया जा सकता है। जनमानसय में अभीष्ट आवेश भरे जा सकते हैं और लोक प्रवाह को मोड़ा–मरोड़ा जा सकता है।

कारण शरीर के तीन प्रयोग हैं, उन्हें "ग्रन्थि भेद" कहते हैं। मस्तक मध्य में ब्रम्ह ग्रन्थि है, जिसे कैलाश पर्वत अथवा क्षीर सागर कहा जाता है। उसे ब्रहमाण्डीय शक्तियों के साथ आदान–प्रदान में निरत ध्रुवकेन्द्र कहा जा सकता है। दूसरा हृदय देश में विष्णु चक्र है। उसे चेतना का अन्तराल कह सकते हैं। भाव संवेदनाओं का केन्द्र यही है। तुष्टि, तृष्ति और शान्ति यहीं मिलती है। अपने मानस को उच्चस्तरीय बनाने के अतिरिक्त दूसरों की समझ को भी समुचित मोड़ देना, इस विष्णु ग्रन्थि की शक्ति के सहारे ही बन पड़ता है। तीसरी ग्रन्थि है रूद्र ग्रन्थि। यह नाभि चक्र में है। शारीरिक स्वास्थ्य, प्रतिभा, प्रखरता, सशक्तता, साहसिकता, उत्पादन, अभिवर्धन जैसे अनेकों

शक्ति स्त्रोत इस क्षेत्र में पाये जाते हैं। मूलाधार चक्र इसी गह्वर में है। कुण्डलिनी के चिर विश्राम का क्षेत्र यही है। उसे प्राण–प्रहार से ही जगाया ऊँचा उठाया और ब्रम्हलोक तक पहुंचाया जाता है।

स्थूल शरीर के छः चक्र, सूक्ष्म शरीर के पांच कोश–कारण शरीर की तीन ग्रन्थियां मिलकर चौदह बनते हैं। यही चौदह भुवन हैं। इनमें से सात ऊर्ध्वलोक हैं और सात अधः लोक। सात का उन्नयन अभ्युदय के लिए प्रयोग होता है; और सात का दुष्टता के दमन के लिए–संकट निवारण हेतु। मानवी सत्ता को ही समुद्र माना जाता है और उसे त्रिविधि कुण्डलिनी साधना द्वारा मथा जा सकता है। सही अर्थो में इसमें शरीर ही दैत्य है, और मन ही देव है। दोनों मिलकर जब तप योग की शाखा – प्रशाखाओं का अवलम्बन लेते हुए साधनारत होते हैं तो उपरोक्त 14 रत्नों को हस्तगत करते हैं। पौराणिक समुद्र मन्थन में इन्हीं का वर्णन विवेचन अलंकारिक रूप में किया गया है। मानवी सत्ता के पंच तत्वों और पांच प्राणों से बने हुए कलेवर को समुद्र जितना गहरा और विशाल रत्नाकर माना गया है। अभीष्ट की प्राप्ति के लिए हमें कहीं अन्यत्र बाहर जाने की आश्यकता नहीं। जो चाहिए सो भीतर ही विद्यमान है। उसे बाहर क्यों ढूँढ़ा जाय?कस्तूरी हिरन की तरह अपनी नाभि में ही क्यों न तलाश लिया जाय?

संक्षेप में यही है–कुण्डलिनी विज्ञान की रूपरेखा जिसका इस अंक के विगत पृष्ठों में परिचय, विवरण–विधान का संकेत दिया गया है। पर इन चौदह विधानों में से किसी की भी समग्र रूपरेखा जानबूझ, कर प्रस्तुत नहीं की गयी है। क्योंकि यह अणु विस्फोट जैसा प्रयोग है। प्रयोग से पूर्व यह जानना पड़ता है कि किस स्थिति का, कौन व्यक्ति, किस प्रयोजन के लिए इसे प्रयुक्त करना चाह रहा है। यह विदित हुए बिना साधना 'आरम्भ कर देना बारूद के ढेर के साथ खिलवाड़ करने के समान है। गलत उपयोग से कर्ता की ऐसी हानि भी हो सकती है, जिसकी क्षतिपूर्ति न हो सके। नौसिखियों और असावधानों के लिए तो ज्ञानयोग, भक्तियोग, कर्मयोग प्रज्ञायोग आदि सरल जीवन साधनाओं से भी काम चल सकता है। वे इतना ही कर लें तो बहुत है।

कुण्डलिनी विधान सीखने के लिए किसी को भी आतुरता नहीं अपनानी चाहिए और न उसका कोई सिरा पकड़कर पूर्णता तक पहुंचने की साध संजोना चाहिए। इस महान प्रयोग में से जितना जिसके लिए उचित और

आवश्यक है, उतना उसे सिखाते रहने की हमारी जिम्मेंदारी कम से कम एक शताब्दी तक बनी रहेगी उसे बताया और सिखाया जाता रहेगा। स्थूल शरीर न रहने पर भी हमारी सूक्ष्म सत्ता अपने सामयिक दायित्वों का निर्वाह भली प्रकार करती रहेगी।

किसी सत्पात्र को यह अनुभव न होने दिया जायगा कि सिखाने वाले के अभाव में हमारी आत्मिक प्रगति की उचित आवश्यकता कुण्डलिनी जागरण का विधान न मालूम होने के कारण इच्छा पूर्ति न हो सकी। जिस प्रकार दिव्य शक्तियों ने हम से 24 वर्ष में महापुरश्चरण पूरा कराया और तीन वर्ष में कठोर तप के माध्यम से देश की कुण्डलिनी जगाने का विधान ही नहीं बताया वरन् साथ देकर जो आवश्यक था, उसे पूरा करने का सरंजाम भी जुटाया। उसी प्रकार हम भी यह प्रयत्न करेंगे कि प्रज्ञा परिवार के परिजनों में से जो विशेष प्रयोजन के लिए विशेष आत्मबल संग्रहित करने के लिए कुण्डलिनी विज्ञान का आश्रय लेना चाहें,उनकी आवश्यकता को पूरी करने के लिए आवश्यक संयोग बिठाते एवं सरंजाम जुटाते रहें।

उपसंहार

प्रस्तुत शोध प्रबंध "कुण्डलिनी का स्वरूप और जागरण की प्रक्रिया" के प्रथम अध्याय में योग की परम्परा एवं इतिहास का वर्णन किया गया है। इसमें यह विवेचन किया गया है कि योग की परम्परा अत्यंत प्राचीन है। इसको प्रारंभ किसने किया और कब किया इस प्रश्न का उत्तर देते हुए गीता के चतुर्थ अध्याय में श्रीकृष्ण जी ने अर्जुन से कहा "इस योग का उपदेश सृष्टि के आरंभ में मैंने सूर्यदेवता विवस्वान को दिया उसने अपने पुत्र मनु को, मनु ने इच्छवाकु को बताया और फिर एक राजर्षियों की एक लम्बी परम्परा चली अंत में वह योग लुप्त हो गया उसी को आज मैने तुम्हारे सामने पुनः प्रकट किया है।" इसका तात्पर्य है कि स्वयं भगवान ने सृष्टि के प्रारंभ में ही योग की परम्परा की शुरूआत की थी।

किन्तु पतंजलि के योगशास्त्र में पृथ्वी को जिन्होने अपने मस्तक पर आधार दिया उस शेषनाग को योग के प्रारंभकर्ता के रूप में माना गया है। पतंजलि उन्ही शेषनाग के अवतार थें ऐसी मान्यता है। अतः योग की परम्परा पृथ्वी से भी पुरानी हो जाती है।

योग के इतिहास को पांच खण्डों में बांटा गया है इसमें सबसे प्रथम कालखंण्ड श्रुतिकाल था यह एक लम्बा समय था जो वेदो की रचना से लेकर बुद्ध भगवान के बाद लगभग दो शताब्दियों तक रहा। दूसरे कालखण्ड को दर्शनों का काल कहते है जिसमें विभिन्न भारतीय दर्शन के सूत्र गंथों की रचना हुई तृतीय काल खण्ड टीकाग्रंथों का काल यह तृतीय शताब्दि ईसवी से दसवी शताब्दि तक का था। इसके बाद चौथें काल खंण्ड में भक्ति व हठयोग इन दो धाराओं का विकास हुआ। इसके बाद उन्नीसवी शताब्दि के मध्य हम योग के इतिहास का आधुनिक काल मान सकते है।

इन पॉच काल खण्डों में योग का स्वरूप क्या था। उसका विकास एवं प्रचार किस प्रकार हुआ था। उसकी जानकारी हमें उसकाल के साहित्य से मिलती है। योग शब्द का तकनीकी अर्थ मन का आत्मा से आत्मा का परमात्मा से मिलन हो से है। यद्वपि वैदिक ऋचाओ में योग का यह अर्थ

दृष्टिगोचर नहीं होता किन्तु प्राचीन उपनिषदों में उक्त अर्थ का आर्विभाव हुआ। हम संदर्भ में कठोपनिषद, श्वेताश्वर आदि के नामों को उद्घत किया जा सकता है इस योग के आदि उपदेष्टा के रूप में हिरण्यगर्भ का नाम प्रतिष्ठित है हिरण्यगर्भ ने योग की क्या परिभाषा दी होगी? यह उल्लेख तो नहीं मिलता तो भी अन्यान्य ग्रंथों में योग की अनेक परिभाषाएँ प्राप्त होती है जिसमें विभिन्न तत्वों को प्रधानता दी गई है। जैसे किसी में कर्म की, किसी में ज्ञान की, किसी में भक्ति की आदि। जिस परिभाषा में जिस तत्व को प्रधानता दी गई है उसी के आधार पर योग के अनेक प्रकार प्रकट हो गये। प्रमुख प्रकार राजयोग, भक्तियोग, निष्काम कर्मयोग, और हठयोग है। योग के विभिन्न प्रकार होने पर भी उनकी अपनी विशेषताएँ है किन्तु सभी की रीढ़ अभ्यास और वैराग्य ही है। आज के युग में जिस योग के प्रति आकर्षण बढ़ा है वह है हठयोग। इसका अर्थ है ह + ठ का मिलन अर्थात सूर्य और चंद्र का मिलन। याने दाये बाये नासापुटों में प्रवाहित प्राणवायु का मिलन। हठयोग की महत्वपूर्ण कृति हठयोग प्रदीपिका ने हठयोग के चार अंग मानकर आसन, प्राणायाम, मुद्रा और नादांनुसंधान का विवेचन होने के साथ ही यम नियम षट्कर्म और समाधि का भी वर्णन किया गया है।

आसन चौरासी लाख है किन्तु शास्त्रों में उनके सभी नाम प्राप्त नहीं होते तथा मात्र चौरासी मुख्य समझे गये है प्राणायाम के अभ्यास से चित्र के मल अर्थात क्लेश एवं कर्माशय दूर करके चित्त स्थिर किया जाता है। तथा मुद्रा अभ्यास द्वारा कुण्डलिनी जागरण का प्रयत्न करके उसे मध्य नाड़ी सुषुम्ना में प्रवेश करते है। मुद्रा का अभ्यास प्राणायाम सहित करते हुये कुण्डलिनी जागरण कर नादांनुसंधान का आश्रय लेकर मन को एकाग्र कर समाधि अवस्था प्राप्त करते है। यही हठयोग का परम लक्ष्य है।

द्वितीय अध्याय में कुण्डलिनी क्या है?उसकी वैज्ञानिक व्याख्या पौराणिक व्याख्या उसका स्वरूप और आधार व कुण्डलिनी का स्थान मानव शरीर में कहा है।? उसका विस्तृत वर्णन किया गया है। कैवल्य और विवेक ख्याति के अलावा कुण्डलिनी योग, योग की सबसे अधिक महत्वपूर्ण श्रृखला कही जा सकती है, परंतु इतनी अधिक महत्वपूर्ण होते हुये भी यह संकल्पना अत्यंत अस्पष्ट और रहस्यमयी रहीं है। यह महज आश्चर्य ही है ग्रंथों में जो वर्णन मिले है उनसे तो लगता है कि वह शरीर का कोई अंग या अवयव हो किन्तु प्रत्यंक्ष में ऐसा कोई अंग दिखाई नहीं देता जिसके बारे में हम "यही

कुण्डलिनी है" ऐसा कह सके इस पर यह कहा जा सकता है कि वह तो शक्ति स्वरूप है, वस्तु स्वरूप नहीं। कुण्डलिनी के संबंध में एक विशेष बात यह है कि योग के सर्वप्रसिद्ध और प्रमुख दो ग्रथों अर्थात भगवद्गीता में तथा पतंजलि योगसूत्र में उसके संबंध में कोई उल्लेख नहीं मिलते। इससे यह अनुमान लगाया जाता है कि शयद षट्चक्र, इड़ा, पिडला एवं सुषुम्मा ये तीन नांड़िया तथा कुण्डलिनी शक्ति ये सभी संकल्पनाएँ मूलतः योग की न होकर तंत्र शास्त्र की थी। तंत्र से ही ये संकल्पनाएँ हठयोग से आयी होगी। हठयोग में इनका महत्व सर्वोपरि रहा। कुण्डलिनी के संबंध में शिवसहिता, दर्शनोपनिषद, षट्चक्र निरूपणम् आदि में इसका वर्णन मिलता है। इन सभी वर्णनों से ऐसा कह सकते है कि हमारी देह में साढ़े तीन गेंडुली बनाये मूलाधार के नीचे कटि प्रदेश में जो 'कंद' है उसमें विराजमान है इसके सोते रहने से व्यक्ति अगानी रहता है तथा जागने पर ज्ञानी हो जाता है। वैज्ञानिक इस निष्कर्ष पर निकल आये है कि शरीर में विभिन्न ज्ञानेद्रियों के केन्द्र स्थूल इंत्रियॉ नही वरन उससे भी सूक्ष्म और संवेदन शील कोई स्थान शरीर में है जिन्हें न तो यंत्रो के द्वारा पकड़ा जा सकता है और न स्थूल ऑखों से देखा जा सकता है। वे अत्यंत शक्तिशाली, महत्वपूर्ण और अनेक रहस्यो से परिपूर्ण है। शरीर में उसके जीव कोश, रसायन हारमोन, जीन्स आदि की अपनी सुविस्तृत व्यवस्था है। मूलाध ार मलमूत्र छित्रों के मध्य है इस स्थान की शल्य क्रिया करने पर जो नाड़ी गुच्छक पाया गया है उसे 'सेक्रलप्लेक्सस' कहते है इससे स्नायु प्रवाह माध्यम से प्रायः कामोत्तेजना उभरती रहती है और संतोनोत्पादन के लिए शुक्राणु डिम्बाणु प्रजनन अंगो में बनते रहते है। यही से ढाढ़ी मूछ, पौरूष, साहस, श्रमयोग्य कठोरता उभारने वाले हारमोन उत्पन्न होते है योगाभ्यास में इसे अग्निकुण्ड, कुण्डलिनी निवास आदि नाम दिया गया है।

कुण्डलिनी की पौराणिक व्याख्या मानव को देवताओं के समतुल्य कहा गया है हमसे देवताओं के जिस अंश का प्रत्यक्ष और सीधा संबंध है वह अंश अपने भीतर ही 'शक्ति बीजों' के रूप में विद्यमान रहता है। योग साधनाओं का प्रायोजन इन्ही 'शक्ति बीजों' को जागृत और समर्थ बनाना है प्राचीन काल में तपस्वियों द्वारा शाप और वरदान दे सकने की क्षमता इसी कुण्डलिनी जागृति का ही परिणाम हुआ करती थी। कुण्डलिनी शक्ति जागृत कर लेने वाला इंद्रियों को उसी तरह वश में कर लेता है, जिस तरह लगाम लगे हुए घोंड़ों को वस में कर लिया जाता है जिसने इंद्रियो को जीत लिया संसार

में उसको किसका भय। जो निर्भय हो गया वही विश्व विजेता हो गया।

कहना न होगा कि मनुष्य के स्थूल जीवन की नहीं व्यवहारिक जीवन की सफलता और समुन्नति का आधार भी कुण्डलिनी शक्ति ही है। कुण्डलिनी को भिन्न भिन्न देशों में भिन्न भिन्न नामों से पुकारा जाता है। जापान में 'की' चीन में 'ची' नाम से पुकारते है। ईसाई लोग होली–स्पिरिट तो हिन्दु 'चित्त शक्ति' कहते है देवी पूजक 'चिर कुमारी' तो तांत्रिक ऊर्ध्वरेतः शक्ति तथा योगी सर्प की कुण्डली की संज्ञा देते है।

तृतीय अध्याय में षट्चक्रों का वर्णन किया गया है। "चक्र" इनको "पद्म" या "कमल" इन शब्दों से भी कहा गया है कुण्डलिनी की भॉति चक्र भी रहस्यमय है इनको हम किसी अंग की तरह देख नहीं सकते शायद चक्र प्रतीकात्मक है। यद्वपि "षट्चक्र" इस शब्द के अनुसार इनकी संख्या छः होनी चाहिए फिर भी वे संख्या में कुल सात है। इनके नाम क्रमशः मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपुर, अनाहत, विशुद्ध, चक्र, आज्ञा चक्र, और सहस्रार चक्र है प्रत्येक चक्र का अपना स्थान, एक निश्चित संख्या, रंग, बीज,, दलों की संख्या और अधिष्ठात्री देवता है। योगाचार्यो ने चक्रों को "कमल" नाम से सम्बोधित किया है जैसे ह्रदय कमल नाभि कमल, सहस्रार कमल आदि। अंग्रेजी में इसे 'प्लेक्सस' कहते है।

ये चक्र मेरूदण्ड के भीतर चित्रणी नाड़ी के मध्य में होते है कुण्डलिनी शक्ति जाग्रत होकर जब ब्रह्मनाड़ी से ऊपर की ओर बढ़ती है, तब उसके मार्ग में होने वाले ये चक्र खिल जाते है तथा उनके मुँह ऊपर हो जाते है षट्चक्र निरूपण ग्रंथ में मूलाधार चक्र से लेकर सहस्रार चक्र तक सात चक्रों का विस्तार से वर्णन किया गया है। अनेक वैज्ञानिको ने अपनी पुस्तको या ग्रंथों में चक्रों को एनॉटामी की शब्दावली में समझाया है। चिकित्सा विज्ञान में मर्म स्थानों का विशेष महत्व बतलाया गया है जापान और चीन में एक्यूपंचर एवं एक्यूप्रेशर चिकित्सा प्रणाली का मूल आधार यही मर्म स्थान है। मर्म स्थानों पर तंत्रिका तंतु अधिक एकत्रित व सघन होते है तथा वे केन्द्र से एवं एक दूसरे से संबंधित भी होते है। मर्म स्थानों के अतिरिक्त शरीर में सात ऐसे प्रमुख केन्द्र है जिनमें प्राणशक्ति और अतीन्द्रिय क्षमताओं का अपान वैभव प्रसुप्त स्थिति में दबा पड़ा है इन स्थानों को चक्र या प्लेक्सस कहते है। इन केन्द्रों में ज्ञान तंतु अधिक मात्रा में उलझे रहते है। स्थूल एवं सूक्ष्म शरीर के मिलन स्थान पर चक्रों की उपस्थिति बतायी गई है। चक्रों की

जागृति मनुष्य के गुण कर्म न स्वभाव को प्रभावित करती है जब जाग्रत कुण्डलिनी चक्रो का भेदन करती हुई आज्ञाचक्र का भेदन करती है। तब प्रारंभ में कर्कश तथा बाद में मधुर ध्वनि सुनायी पड़ती है। यह ध्वनि अभौतिक अभूर्त होती है उसकी मधुरता से वशीभूत मन एकाग्र हो जाता है तथा उसकी चंचलता समाप्त हो जाती है वह धीरे –धीरे आत्मस्थ हो जाता है उसे परम शांति मिल जाती है जो इस रहस्य को जान जाता है। वह ब्रह्मवर्चस्व प्राप्त करता है, नर से नारायण बनने का अवसर प्रदान करता है।

इस शोध प्रबंध के चौथे अध्याय में कुण्डलिनी की प्रसुप्तावस्था, जाग्रतावस्था व उसकी जागृति से पूर्ण की तैयारी की विवेचना की गई है। घेरण्ड संहिता में प्रसुप्तावस्था का वर्णन इस प्रकार है "जब तक कुण्डलिनी देह में सोती रहती है, तब तक जीव पशु की तरह अज्ञानता में बंधा रहता है सत्य और असत्य कुछ भी नहीं जान पड़ता भले ही कोटि प्रकार से योगाभ्यास करें किंतु कभी सत्य ज्ञान को नहीं जान सकता।"

कुण्डलिनी जागृति की साधना के लिए मानव देह को मात्र मनोभूमि का ही परिशोधन नहीं, नाड़ी शोधन के लिए नेति, धौति, बस्ती, कपालभॉति, बज्रोली आदि की भी तैयारी करनी पड़ती है। कुण्डलिनी शक्ति जागृत होने पर साधक संसार के प्रति अदासीन हो जाता है। तथा वह सर्वोच्च स्थित चेतना से संयुक्त हो जाता है जिसे शिव कहते है।

पंचम अध्याय में निष्कर्ष मिला कि समस्त विश्व के सम्मुख जितनी विकट समस्याएँ अभी सामने है वह पहले कभी देखने में नही आई। अणु–आयुधों का विस्तार, नक्षत्र युद्ध की आसन्न विभीषिका, चारो ओर संव्याप्त वैचारिक एवं पर्यावरण प्रदूषण, प्रकृति का असुतलन एवं मारक रोगों की भरमार, अपराध आतंक का काला साया चारों ओर व्याप्त है, संकटों का दानवी समुदाय एकत्रित होंकर संचित सभ्यता का विनास जिस प्रकार करने पर तुला है यदि उन्हे मनमानी करने दी जाए तो प्रलय के दृश्य प्रस्तुत हो सकते है इनकी रोकथाम आवश्यक है ऐसे में मार्गदर्शन के निर्देशानुसार एक ही उपाय शेष रहा है, कि बड़ी मात्रा में शक्ति का उपार्जन एवं तदुपरान्त विवरण हेतु स्वयं ही आगे आया जाए। और मार्ग बदलना है तो स्थिति के अनुरूप वह भी बदल लिया जाए।

सन् 1984 में वह परिवर्तन किया गया एकांत साधना–सावित्री साधना का अवलम्बन लिया गया। सावित्री साधना पंच कोशों के जागरण की

कुण्डलिनी जागरण की साधना है। जिस मार्ग दर्शक ने गायत्री साधना में हमें प्रवृत किया उसी ने सावित्री साधना का विधान बताया ताकि हमारे माध्यम से अन्य अनेक प्रसुप्त देवताओं का शक्ति जागरण हो वे वास्तविक स्वरूप को पहचाने और आत्मिक प्रगति के माध्यम से समष्टिगत हित साधक कर सकें। पिछले दिनों कुण्डलिनी विज्ञान का काफी अन्वेषण, पर्यवेक्षण, प्रयोग–परीक्षण, अध्ययन–अवगाहन चलता रहा है इस संदर्भ में नई पुरानी पुस्तको में चित्र विचित्र प्रकार के उल्लेख मिलते है।

वस्तुतः कुण्डलिनी जागरण का उद्देश्य मूलाधार से सहस्रार काम बीज से ब्रह्मबीज तक पहुॅचने का है। इन दोनों की असीम एवं अन्नत जानकारी प्राप्त करने और उन सामर्थो को जीवन विकास के अन्तरंग और बहिरंग क्षेत्रों में ठीक तरह प्रयोग कर सकने की विद्या का नाम ही कुण्डलिनी विज्ञान है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. डॉ कालिदास जोशी एवं डॉ गणेश शंकर – योग के सिद्धांत एवं अभ्यास।
2. डॉ कालिदास जोशी – व्यवहारिक योग।
3. अरूण कुमार सिंह – सामान्य मनोविज्ञान।
4. शांति प्रकाश आत्रेय – योग मनोविज्ञान।
5. डॉ गणेश शंकर – होलस्टिक एप्रोच ऑफ योग।
6. केन्द्रीय योग एवं प्राकृतिक चिकित्सा अनुसंधान परिषद – साधारण रोगों की यौगिक एवं प्राकृतिक चिकित्सा।
7. स्वात्माराम – हठयोग प्रदीपिका।
8. डॉ राजेश दीक्षित – ह्यूमन एनॉटामी एण्ड साइकोलाजी।
9. गीता प्रेस गोरखपुर – श्रीमद्भागवत् गीता।
10. गीता प्रेस – कल्याण योगांक।
11. डॉ राजकुमारी पाण्डेय – योग के विविध आयाम।
12. नारायण प्रकाश एवं डॉ गणेश शंकर – स्वास्थ्य एवं योग।
13. खेमराज श्री कृष्ण दास – हठ योग प्रदीपिका प्रकाशन दिल्ली।
14. संपादकीय योग विद्या मार्च 1979 स्वामी सत्यानंद सरस्वती – आसन, प्राणायाम, मुद्रा, बंध।
15. डॉ रामनाथ और डॉ रचना शर्मा – भारतीय मनोविज्ञान।

डा0 राकेश गिरी

जन्मः 2 मई 1957 (खुरजा, उत्तर प्रदेश)

शिक्षाः एम0एससी0, पीएच0डी0, स्नात्कोत्तर योग डिप्लोमा

1975 से योग शिक्षा में शिक्षण कार्य से सम्बंधित।

1977 से 2003 तक शासकीय योग संस्थान चण्डिगढ में योग शिक्षण एवं चिकित्सा कार्य।

2003 से गुरूकुल कांगडी विश्वविद्यालय हरिद्वार के योग विज्ञान विभाग में शिक्षण कार्य।

योग एवं चिकित्सा के क्षेत्र में विपुल अनुसंधान (वैज्ञानिक तथा साहित्यिक)।

10 से अधिक शोध पत्र कार्य (वैज्ञानिक तथा साहित्यिक)

योग शिक्षा प्रचार प्रसार एवं योग प्रशिक्षण हेतु भारत एवं कई अन्य देशों (द0 कोरिया, इरान, आट्रिया, आदि) का भ्रमण।

योग के क्षेत्र में सराहनीय कार्यों के लिए अनेक राष्ट्रीय एवं अंतराष्ट्रीय सम्मान।

विविध शासकीय एवं विश्वविद्यालयीन योग समितियों के सदस्य

पुरस्कृत परिचय

आत्मा की प्रसुप्तावस्था से जागृत कर व्यक्ति को असाधारण शक्ति संपन्न बना देने वाली शक्ति का नाम कुण्डलिनी है। उसका स्थान काय कलेवर में मेरूदण्ड के अंतिम भाग में स्थित मूलाधार चक्र माना जाता है। इस संस्थान को आंखों या विज्ञान के यंत्रों से नहीं देखा जा सकता। वहां तक पहुंचने और उस स्थान को उद्दीप्त कर जागृत करने में केवल भारतीय योग विद्या ही समर्थ हैं।

कैवल्य और विवेक ख्याति के अलावा योग की यह शायद सबसे अधिक महत्वपूर्ण श्रृखंला कही जा सकती हे, परंतु इतनी अधिक महत्वपूर्ण होते हुये भी यह संकल्पना अत्यंत अस्पष्ट और रहस्यमयी रही है। यह महज आश्चर्य ही है। ग्रंथों में जो वर्णन मिलते है उन से तो लगता है, कि वह शरीर का कोई अंग या अवयव हो किंतु प्रत्यक्ष में ऐसा कोई अंग दिखाई नहीं देता जिसके बारे में हम "यही कुण्डलिनी है" ऐसा कह सके इस पर यह कहा जा सकता है कि वह तो शक्ति स्वरूप है, वस्तु स्वरूप नहीं। इसको आधार शक्ति, परमशक्ति, वाचाशक्ति आदि शब्दों से कह सकते हैं। कुण्डलिनी योग सध सके तो शारीरिक, बलिष्ठता, मानसिक प्रतिभा एवं आत्मिक वर्चस्व को असाधारण रूप से बढ़ाया जा सकना संभव है।

योग प्रशिक्षण केन्द्र, योग महाविद्यालय, विश्वविद्यालय आदि के अलावा योग को शारीरिक शिक्षा महाविद्यालयो एवं विभागों में, शिक्षा महाविद्यालयों में योग पठन पाठन का अनिवार्य विषय बनाया गया है। स्नात्कोत्तर स्तर पर मनोविज्ञान, दर्शन एवं संस्कृत विषयों के अंतर्गत भी योगविषय को महाविद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों में पढाया जाता है । अतः स्कूलों, महाविद्यालयों, विश्वविद्यालयों और योग शिक्षक प्रशिक्षणालयों के विभिन्न स्तर के विद्यार्थिओं की आवश्यकताओं के अनुरूप कुण्डलिनी योग नामक इस पुस्तक के विविध अध्यायों में समुचित पाठ्यकमों को सरल और सहज भाषा में प्रस्तुत किया है। अन्त में आवश्यक विभिन्न चित्रों को भी दर्शाया गया है। योग के शिक्षकों, छात्रों, जिज्ञासुओं एवं सामान्य पाठकों को इसका अधिकाधिक लाभ प्राप्त होगा ऐसा हमारा पूर्ण विश्वास है

मूल्य रु. 100.00

सत्यम् पब्लिशिंग हाऊस
N-3/25, मोहन गार्डन, नई दिल्ली-110059
Ph.: 25358642
E-mail : satyampub_2006@yahoo.com

ISBN 978-93-80190-68-6

शोरूम : 4378/4बी, 305, जे.एम.डी. हाऊस, मुरारीलाल स्ट्रीट, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली-110002 मो. 09968277749